अंक 1, सत्र-2020

# अनाहत

देव संस्कृति विश्वविद्यालय

www.dsvv.ac.in

**सूक्ष्म-संरक्षण**

परम पूज्य गुरुदेव

एवं

परम वंदनीया माताजी

**संरक्षक**

परम श्रद्धेय कुलाद्यिपति जी

एवं

परम श्रद्धेया जीजी जी

**मार्गदर्षक मंडल**

श्री शरद पारघी, मा० कुलपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय

डा० चिन्मय पण्ड्या, मा० प्रतिकुलपति, देव संस्कृति विश्वविद्यालय

श्री बलदाऊ देवांगन, कुलसचिव, देव संस्कृति विश्वविद्यालय

कुलपिता
**पं.श्रीराम शर्मा आचार्य**
(1911-1990)

कुलमाता
**माता भगवती देवी शर्मा**
(1926-1994)

संरक्षक
**डॉ.प्रणव पण्ड्या**
कुलाधिपति

संरक्षिका
**शैलबाला पण्ड्या**
प्रमुख गायत्री परिवार

# संपादकीय

जीवन की नयी सुबह हम सभी का इंतजार कर रही है। यह समय जागरण का है। भोर की लालिमा, दूर क्षितिज पर विराजमान है। पक्षियों के कलरव शुरु हो चुके हैं। बसंती बयार को जागृत आत्माएँ स्वयं महसूस कर सकती हैं। यह आत्मिक जागरण का समय है। आत्मिक कलेवर से आध्यात्मिक जागरण, सुखद भी है और चेतना का उन्नायक भी। ऐसे ही एक नयी उर्जा और उत्साह के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय भी उठ खड़ा हुआ है।

अपनी त्रैमासिक हिंदी पत्रिका 'अनाहत' के साथ। अनाहत तो जीवंत है, शाश्वत है और हर आहत मन में अनाहत के स्वर प्रस्फुटित करने का यह प्रयास है। इसमें अनाहत नाद के निनाद को समेटने की चेष्टा है। चिंतन, चरित्र और व्यवहार में अगर अनाहत उतर गया तो फिर अवसाद और विषाद स्वतः तिरोहित हो जायेंगे। अनाहत तो परमात्मा के श्रीमुख से उद्गम हुआ वह उद्घोष है जो बार-बार एक ही बात परम पूज्य गुरुदेव के वचनों अनुसार कहता है - और कोई हो न हो मैं तु6हारा हूँ। जागृत और प्रखर चेतना को अनाहत ही जगाएगा। समसामयिक परिस्थितियों में पॉचजन्य उद्घोष का माद्दा सिर्फ अनाहत में छिपा हुआ है।

प्रयास यही की दिव्यता के कलेवर में, समसामयिक विषयों को पूरी गंभीरता के साथ उठाया जाए। लोगों में उभरते आक्रोश को नूतन दिशाधारा देने का यह सार्थक प्रयास है। ईश्वरीय विधान सुनिश्चित है- देवत्व का जागरण भी होगा और अभिवर्धन भी। गहन कुहासा अपने आप छटेगा। इस छटपटाहट और बैचेनी में अनाहत ही सहारा है। इस कुहासे को दूर करने का एक अभिनव प्रयास- अनाहत है। चित्त के जागरण से लेकर, आंतरिक पर्यटन की गाथा को, अनाहत अपने आप में समेटे हुये है। भाषा, साहित्य, दर्शन और पत्रकारिता के कलेवर को भी इसमें समुचित स्थान दिया गया है। सूचना प्रौद्योगिकी से लेकर खेल, आर्ष साहित्य, मनोविज्ञान और पर्यायवरण का इसमें समावेश है।

प्राणों के इस अभिनव संसार में हर गायत्री परिजन की अपनी सुनिश्चित भूमिका है। समुद्र मंथन तो होकर रहेगा। रत्नों की इस खान में विष और अमृत दोनों प्राप्त होगें। देखना यही है कि इस विषम वेला में कितने देवत्व के अधिकारी होकर अमृत पान करेंगे और ऐसे कितने होंगे जो शिव के सहयोगी होकर हलाहल को अपने कंठ में स्थान देंगे। अनाहत को प्रस्तुत करते हुए हर्ष भी है और आनंद भी। ज्ञान के विशाल सागर से कुछ बूदें निकालने पर भी पूर्णता ही शेष रहेगी। इदं ना मम् के भाव से यह पत्रिका सुधि पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। परम पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के श्रीचरणों में समर्पित होकर, यह पत्रिका अपने लक्ष्य को हस्तगत करें, ऐसी शुभेच्छाओं के साथ।

**- ब्रह्मवर्चस**

# मुस्कानों से भरा हुआ मधुमास तुम्हें दूँगा।

छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा।
नभ को भी छू सको, वही विश्वास तुम्हें दूँगा।

बहुत रो लिये, रोने-धोने की बातें छोड़ो।
रो-रोकर, मत अपनी, रत्नों सी आँखें फोड़ो॥
मुस्कानों से भरा हुआ मधुमास तुम्हें दूँगा।
छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा॥

पतन, पराभव की दुनिया, अब मत स्वीकार करो।
दीन, हीन जीवन जीने से, अब इन्कार करो॥
गौरव से जी सको, वही उल्लास तुम्हें दूँगा।
छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा॥

कुछ करने के योग्य नहीं हो, छोड़ो इस भ्रम को।
असफलता ही मिली अभी तक, तोड़ो इस क्रम को॥
चरण सफलता चूम रही, आभास तुम्हें दूँगा।
छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा॥

भूल रहे हो तुम, ऋषियों की परम्पराएँ हो।
सिद्धि साधना से, पाने वाली क्षमताएँ हो॥
घबराओ मत ! वही अमर इतिहास तुम्हें दूँगा।
छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा॥

जब सुषुप्त-देवत्व तुम्हारा, तुम में जागेगा।
स्वर्ग, धरा पर आने की अनुमतियाँ माँगेगा॥
आशीशों के आँचल में आकाश तुम्हें दूँगा।
छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा॥

प्रज्ञा-पुत्रों ! तुम प्रज्ञा-युग के आराधक हो।
और लोक मंगल के, शिव-संकल्पी साधक हो।।
तुम मेरे हो, जो है, मेरे पास तुम्हें दूँगा।
छोटा मन मत करो ! नया आकाश तुम्हें दूँगा॥

- पं.श्रीराम शर्मा आचार्य

# अनुक्रमणिका

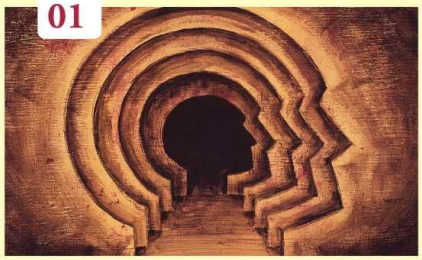

01 आहत मन से अनाहत के स्वर

03 सफल संवाद में बॉडी लैंग्वेज का महत्व

05 सकरात्मक पत्रकारिता की ओर बढ़े कदम

07 भारतीय समाज में ग्रामीण पर्यटन की भूमिका

11 आदर्श जीवन का राजपथ - श्रीमद्भगवद्गीता

13 संजीवनी विद्या का प्रशिक्षण - पूज्यवर की वाणी

17 जब मौन बोल पड़ेगा

19 जीवन यात्रा

21 मन का भ्रम

23 कत्लगड़ साहिब

26 कविताएँ

29 The Art of Resolution

# सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा

the first and the supreme culture of the world

There is need for an educational institution which could mould its students into noble and enlightened human beings: selfless, warm-hearted, compassionate and kind.

- Pandit Shriram Sharma Acharya (1911 - 1990)

/dsvvofficial

# आहत मन से अनाहत के स्वर

■ ब्रह्मवर्चस

मन के अनुसार संसार का चलना बड़ा मुश्किल है। इस कारण यह मन रूठता और मचलता रहता है। मन में कभी वेदना के स्वर फूटते हैं तो कभी संवेदना के स्वर उभरते हैं। इसी ऊहापोह में जिंदगी गुजरती रहती है । दूसरे शब्दों में कहें तो, जिंदगी को वेदना से संवेदना के स्वरों की यात्रा कह सकते हैं। वैसे तो हर यात्रा के अपने पड़ाव होते हैं पर इस विशिष्ट यात्रा का आनंद ही कुछ और है।

सामयिक परिस्थिति कैसी भी हो, मानवीय सोच कब रुकती है। कभी हम नाव पर होते हैं और कभी नाव हमारे उपर होती है। मन का क्या है, उसे तो ऊहापोह की आदत है। वह मन ही क्या जो सहजता से मान जाये? इसी मन की नीति और नियति के मध्य, इन्सानी सोच और समझ डोलती रहती है। कभी संवाद के रूप में तो कभी विवाद के रूप में, यह दोलन प्रक्रिया सतत् - अनवरत चलती रहती है। विवाद ही विषाद की जड़ है। यह सत्य है कि विषाद के कारण, मन में कयी कयास स्वतः लगते चले जाते हैं। कभी शंका-कुशंका जन्म लेती हैं तो कभी अनाकारण ही मन आहत हो जाता है।

समझ का संसार होता ही विरल है। मन के धरातल पर उपजता विषाद कई बार निरर्थक होता है, पर उसे कौन समझाये? विषय की महत्ता कई बार बहुत छोटी होती है पर उसके परिणाम बड़े ही विकट होते हैं। अर्थ के अनर्थ बनने में समय कहाँ लगता है। इसी आहत मन का तो उपाय खोजा जाना है। मन की अपनी गति और अपनी सामर्थ्य है। कई बार वह स्वतः चलता है तो कई बार उसे चलाना पड़ता है। मन के आहत होने की स्थिति और उसकी निरर्थक समझ, कई बार बड़े संकट का कारण बन जाती है।

आहत होने के वैसे तो कई कारण हैं पर उनमें से प्रमुख अपेक्षा को मान सकते हैं। व्यक्ति, वृत्ति या फिर विषय से अतिशय लगाव, हमेशा से दुःख का कारण रहा है। सामाजिक अपेक्षा का पेड़ वैसे ही बड़ा विषम होता है और उस पर अगर लाग-लगाव की बेल लगा ली गयी तो फिर तो उपेक्षा होना तय है और इसकी परीणिति क्रोध, उपहास और आहत होना ही है।

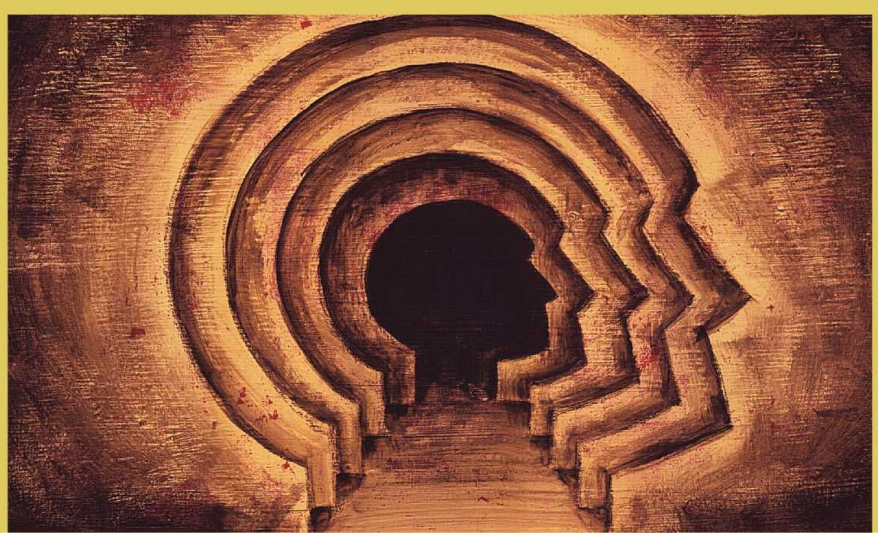

संसार के नियम में परिवर्तन जीवन का शाश्वत मूल्य है पर इन्सान इसे सहजता से ग्रहण नहीं कर पाता है। अपनी सोच से संसार चलाने की सनक, इंसान को चैन से बैठने नहीं देती। वह जोड़-तोड़ में लगा रहता है और येन-केन-प्रकारेण सबको बदलने की कवायद करता रहता है। बदलाव ना कर पाने की खीज, अपने सपने ना पूर्ण कर पाने की हताशा, उसे आहत करती है और ज्यों-ज्यों यह आहत मन का सैलाब बढ़ता जाता है, इन्सानी सोच बदला लेने पर आतुर हो जाती है। कई बार तो यह सनक इन्सान को राक्षसवृत्ति की ओर ढकेल देती है।

सत्य यही है कि कभी परिस्थिति वश तो कभी अपनी छोटी सोच के कारण इन्सान आहत होता रहता है। और ऐसी स्थिति का दोषारोपण दूसरे पर कर के, वह अपने कर्तव्यों की इतिश्री मान लेता है। कर्तव्य-च्युत होकर वह कर्मफल की दुहाई देने से भी बाज नहीं आता है। ऐसी विकृतिपूर्ण आहत सोच को क्या नाम दिया जाये, जिसमें रिश्ते तार-तार होते हैं, अपनों को भरपूर हानि पहुँचायी जा रही हो और इन्सान को फर्क ही नहीं पड़ रहा हो। आहत मन में वेदना के स्वर फूटने ही चाहिये। बुद्ध की करुणा फूटी तो 'बुद्धं शरणं गच्छामि' का सूत्रपात हुआ। महर्षि वाल्मीकि की वेदना प्रस्फुटित हुई तो

'रामायण' की रचना हो गयी। ज्ञान का नया सूत्रपात हमेशा करुणा, वेदना और आहत मन से ही होता है।

अब इस आहत मन को मनाना ही पड़ेगा। इससे कम में तो काम चलने वाला ही नहीं है। मन को मनाने की कवायद का सबसे सरल तरीका है संवेदनाओं का जागरण। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का मन्त्र जब अन्तःकरण में प्रस्फुटित होने लगे, तो समझना चाहिये की मन में नव-अंकुरण होना शुरु हो गया है। संवेदना के जागरण का दूसरा नाम ही देवत्व का अभिवर्धन है। और देवता, आशा-अपेक्षा के कलेवर से परे उत्कृष्ट व्यक्तित्व का दूसरा नाम है। देवता, जग-कल्याण को समर्पित जीवनशैली के पुरोधा का नाम है। यदि जग-कल्याण को कदम बरबस चलने लगे तो समझना चाहिये की हम सही दिशा में अग्रसर हैं। हर आहत और पीड़ित के लिये आपके मन में दर्द उभरने लगे, तो ही आपके जीवन की सार्थकता है।

यहाँ आहत को अनाहत से जुड़ना ही पड़ेगा। आहत की कराह को अनाहत का संबल देना ही होगा। इस अनाहत के विस्तृत कलेवर को आइये समझने का प्रयास करते हैं। अनाहत- जो कभी भी आहत न होता हो। अनाहत सोच हो सकती है। सकरात्मकता का श्रेष्ठ कलेवर लिये, उत्तम सोच को अनाहत सोच कह सकते हैं। मान अपमान के निम्न कलेवर की तिलाञ्जलि देकर ऊर्ध्वगामी सोच को अनाहत सोच कह सकते हैं। अनाहत कृत्य भी हो सकते हैं। दया, ममता, करुणा और मैत्रेयी से परिपूर्ण कृत्यों को, अनाहत कृत्य ही कहेंगे। दूसरे के कष्टों को दूर करने की इच्छा से संपादित कृत्यों को अनाहत कृत्य का नाम दिया जा सकता है। परपीड़ा को समझकर, कर्तव्यों का निष्पादन अनाहत समझ को जन्म देगा। एक ऐसी समझ जिसमें विषय और वस्तु दोनों का ठहराव हो, ज्ञान के आलोक में दूसरे के दुःख को महसूस करने की समझ हो। चित्य में ठहराव के साथ, सोच और समझ के सर्वांगीण विकास के साथ, देवत्व के वरण को तत्पर व्यक्तित्व अनाहत का मूर्त रूप होगा।

अनाहत नाद भी जगत् में संव्याप्त है। अनादिकाल से अनहद गुँजायमान निनाद, अनाहद नाद ही तो है। चिंतन की स्थिरता में, चैतन्यता के द्योतक के रूप में, चैत्य के संवाहक का आरोह-अवरोह, अनाहत नाद है। समूची जगती में गुँजायमान, मानवता के त्राण का अविरल गान, अनाहत नाद है। परमात्मा की अनुपम कृति जिसमें जगती का भेद भी है और जीव के त्राण की कहानी भी है। सरल शब्दों में इसमें माया का दर्शन भी है और परमात्मा के सुदर्शन का दूसरा नाम - अनाहत नाद ही है।

प्रश्न यही कि क्या किसी के आहत होने की प्रतीक्षा की जाये या फिर आहत होने से पूर्व ही मन को अनाहत से जोड़ दिया जाये? सत्य यही कि किसी के आहत होने या ना होने की प्रक्रिया तो, ईश्वर का सांसारिक प्रयोजन है जो अहर्निश चलता रहेगा। कर्मफल का सिद्धांत, व्यवहारिकता का आभाव, जग को हेरने की सनक, सभी को अपने इशारे पर चलाने की सोच, का तो इलाज किसी के पास नहीं है। एक आम इन्सान की भाँति हम क्या करें, यह अभीष्ट है।

इन्सान का आहत होना नैसर्गिक स्वभाव है। रूठना और मचलना तो मन का काम है। पर हमें इससे उबरना सीखना होगा। मन के दास होने की अपेक्षा, निर्द्वन्द जीवन जीना ही होगा। आहत तो अहसास है जिसे परमात्मा की अनाहत सुवास से महकाना ही होगा। आहत तो क्षण भंगुर अवस्था है उसे शाश्वत् सत्य - अनाहत से जोड़ना ही होगा। यहाँ अनाहत कृत्य, सोच, समझ और नाद से जुड़ने और जोड़ने की बात हो रही है, इसमें तो सिर्फ सकारात्मकता की बयार ही बहेगी। इसमें ईश्वरीय आलोक का दर्शन भी होगा और चित्त में पवित्रता का अभिवर्धन भी। इसमें नैसर्गिकता का बोध भी होगा और नैमिष्य में नियरता का दर्शन भी।

आहत तन और मन यदि परमात्मा से जुड़ जाये तो देवोपम वातावरण स्वतः विकसित होता चला जायेगा। पूज्य गुरुदेव का कथन - 'मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण होना' तो भवितव्यता है, क्या बेहतर हो, इसके निमित्त अपने आप को तैयार करें। सद्प्रवत्तियों को अपने जीवन में समाहित करके अपने श्रेय और सौभाग्य को सराहने का अवसर प्रदत्त करें। आइये, इस अनाहत स्वरों को अन्तर्मन में मुखरित करें। अनाहत नाद को अपनी साँसों में सम्मिलित करें और देवोपम पथ पर अग्रसर हो जायें।

# सफल संवाद में बॉडी लैंग्वेज का महत्व

■ डॉ. नरेंद्र प्रताप सिंह, विभागाध्यक्ष, हिंदी विभाग

मानव जीवन रिश्तों का पर्याय है, रिश्ते संवाद से जिन्दा रहते हैं, संवेदनाओं से महसूस होते हैं। संवाद शब्दों की दुनिया नहीं, शरीर की भाषा पर अवलंबित है। इसीलिए सफल संवाद में शब्दों का प्रयोग ७ प्रतिशत तथा शरीर की भाषा (बॉडी लैंग्वेज) का ९३ प्रतिशत होता है। शब्दों के प्रयोग में भाषा के तत्वों का संयोग और व्याकरण के नियमों का पालन करना होता है जबकि शरीर की भाषा या बॉडी लैंग्वेज मौखिक संवाद का रूप है। जिसमें शरीर की मुद्रा, आँख के संकेत, हाथों के इशारे, उठने, बैठने एवं चलने के तरीके सम्मिलित हैं। बॉडी लैंग्वेज गणित के फॉर्मूले की तरह है, जिसका विशेषज्ञ इन्सान को किताबों की तरह समझ लेता है।

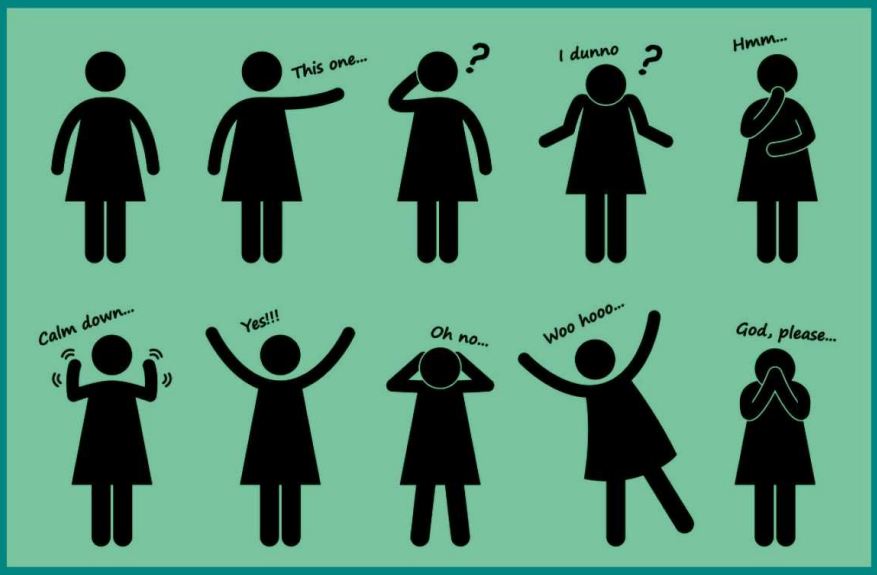


प्रोफेसर एल्बर्ट मेहरा वियन के अनुसार संवाद की सभी भाषाओं की तरह बॉडी लैंग्वेज शरीर की भाषा है। विचार, सोच और इरादों की परख विशिष्ट कला है। वे लोग जो इसे समझ पाते हैं वे किताबों की तरह इन्सानों को पढ़ना बखूबी जानते हैं और यह कला जीवन के हर क्षेत्र में काम आती है। एल्बर्ट बॉडी लैंग्वेज को गणित के फॉर्मूले की तरह मानते है, जिसका हल व्यक्तिगत एवं पेशेवर जिन्दगी को ऊँचाइयों पर ले जाता है। मेहरा वियन के अनुसार संवाद के तीन तत्व महत्वपूर्ण हैं- पहला बॉडी लैंग्वेज, दूसरा आवाज और तीसरा शब्द। किसी भी बातचीत में ५५ प्रतिशत प्रभाव व्यक्ति के बात करते समय बॉडी लैंग्वेज का होता है, जिसमें शरीर की मुद्रा और चेहरे के हाव-भाव होते हैं, ३८ प्रतिशत हिस्सा बातचीत के दौरान प्रयोग की जानेवाली आवाज के आरोह-अवरोह पर निर्भर है। जिसमें शब्दों को बोलने का तरीका, टोन, पिच और गति महत्वपूर्ण हैं और सात प्रतिशत बोले गए शब्दों पर निर्भर करता है।

''सेवन ईजी लेसन टू मास्टर द साइलेन्ट लैग्वेज'' पुस्तक के लेखक जेम्स बोर्ग के अनुसार मानव संवाद का तिरानवे प्रतिशत भाग बॉडी लैंग्वेज का है जो चेहरे के हाव-भाव से प्रकट होता है; जबकि केवल सात प्रतिशत शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्ति होता है। प्रोफेसर वी ट्राइस डे गेल्डर कहते हैं, ''मनुष्य संवाद के लिए भाषा का प्रयोग करता है लेकिन भाषा से संवाद सीमित रूप में होता है, मनुष्य की शारीरिक मुद्राएँ उसके विचारों को अधिक अभिव्यक्त करती है। शोधपत्र ''प्रोसीडिंग्स ऑफ द नेशनल एकेडमी और साइंसेज'' में बॉडी लैंग्वेज के शोधार्थी बी. ट्रइस कहते हैं जैसे जंगल में जानवर अपनी शारीरिक मुद्राओं के माध्यम से संवाद करते हैं। ठीक उसी प्रकार हम भी जाने या अनजाने में अपने शारीरिक हाव-भाव से बात करते हैं। उनका कहना है कि इन्सान चेहरे पर २ लाख ५० हजार हाव-भाव उत्पन्न कर सकता है, जिसे शरीर की मुद्रा, इशारों और आँखों की गति के द्वारा व्यक्त करता है।

बॉडी लैंग्वेज शरीर की भाषा अमौखिक एवं अशाब्दिक अर्थात् मूक है। ''जेस्चर द डुज एंड टैबूज ऑफ बॉडी लैंग्वेज अराउंड द वर्ल्ड'' पुस्तक के लेखक रोजर ई. एक्सटेल है, जिन्होंने दस साल तक बॉडी लैंग्वेज पर अनुसन्धान किया तथा इंग्लैण्ड, जर्मनी, थाईलैण्ड, मलेशिया और फिलीपींस आदि देशों की यात्राओं से प्राप्त अनुभवों को इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। जिसका उद्देश्य जनसामान्य को यह बताना है कि बॉडी लैंग्वेज के द्वारा नकारात्मक व सकारात्मक बातें कैसे व्यक्त की जा सकती हैं। उनकी दृष्टि में बॉडी लैंग्वेज एक ऐसा शास्त्र है, जिसका प्रयोग हम उन बातों को प्रकट करने में करते हैं जिन्हें शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं करना चाहते। संप्रेषण विज्ञान के शोधार्थियों का भी यही मानना है कि संवाद में शब्दों का इस्तेमाल

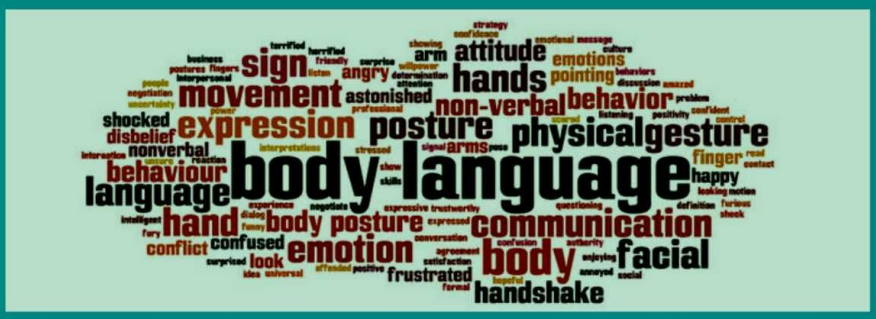


करते समय यदि शारीरिक भाषा को जोड़ दिया जाए तो उसके अर्थ का अधिक से अधिक सही व सफल संप्रेषण होता है।

बॉडी लैंग्वेज द्वारा भीतर चल रही विचारों की श्रृंखला सहजता के साथ व्यक्त होती है। यही कारण है कि जानने व समझने वाले तीस सेकेण्ड में ही सामने वाले के विचार पढ़ लेते हैं। रोजर के अनुसार अपने विचारों को अभिव्यक्त करने में शारीरिक अंग आँखें, मुँह, पैर, हाथ, कन्धे आदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उदाहरण के तौर पर खुली हथेलियाँ गंभीरता, सीखने और जानने की उत्सुकता को दर्शाती है, जबकि चेहरे पर हाथ रखना नकारात्मक होता है। हाथ हिलाकर बातचीत करने का तात्पर्य रूचि के अनुसार वार्तालाप है, कुर्सी पर सहजता के साथ सुकून आरामदायक मुद्रा में बैठना बातचीत के लिए तैयार होने का द्योतक हैं। सेले रेजवानी के अनुसार, ''शब्दों और शरीर की मुद्राओं का तालमेल जरूरी है। मनोवैज्ञानिक पॉल एकमैन का कथन है कि आँखे अशाब्दिक सम्प्रेषण का महत्वपूर्ण माध्यम है। देखने की अवधि, आवृत्ति, तरीका, आँखों की पुतली का फैलाव और झपकने की गति आदि ये सभी अशाब्दिक संवाद हैं। बॉडी लैंग्वेज विशेषज्ञ केविन होगन का मानना है कि झूठ एवं सच का पता भी आँख झपकने से होता है।

एलन और बारबरा ने बॉडी लैंग्वेज को समझने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु बताए हैं, जिनमें इशारे या संकेत को समझने के लिए विभिन्न अवसरों को गम्भीरता से देखना आवश्यक है, क्योंकि अलग-अलग अवसरों पर एक जैसे इशारे अलग-अलग अर्थ प्रकट करते हैं, जैसे सिर खुजाने का अभिप्राय- सिर में पसीना होना, झूठ बोलना आदि है। बॉडी लैंग्वेज को समझते समय जिस विषय पर बात हो रही है, उसे ध्यान में रखने के साथ ही बातचीत के वातावरण को भी समझना आवश्यक है। उदाहरण के तौर पर ठण्ड के मौसम में हाथों-पैरों को कसकर बैठने का मतलब ठण्ड लगने से है, न कि डर लगने से।

मनोवैज्ञानिक एडवर्ड टी. हॉल ने अपनी पुस्तक ''द हिडन डिमेन्शन'' में संवाद के विभिन्न रूपों की चर्चा की है जिनमें पहला- शारीरिक गतिविधि और उसकी विशेषताएँ दूसरा वार्तालाप (बातचीत) में शामिल होने वाला अमौखिक हिस्सा, तीसरा प्रोक्सिमिक्स अर्थात् लोगों के खड़े रहने, बैठने के बीच की दूरी के आधार पर व्यवहार का आकलन तथा चौथा काइनेसिक्स अर्थात् शारीरिक मुद्राओं से जुड़ा अमौखिकसंवाद आदि हैं। प्रोक्सिमिक्स के आधार पर घनिष्ठता, व्यक्तिगत, सामाजिक तथा सार्वजनिक परिस्थिति का मापन दूरी के आधार पर किया जाता है। सामान्य तौर पर घनिष्ठ लोगों के बीच की दूरी १८ इंच, व्यक्तिगत बातचीत में १८ इंच से पुष्टि, सामाजिक या अजनबी लोगों से बात करते समय की दूरी ४ से ८ फीट तथा सार्वजनिक स्थिति अर्थात् भाषण, व्याख्यान आदि में ८ फीट से अधिक दूरी प्रयोग होती है।

यहाँ हॉल के अनुसार हमारे शरीर के विभिन्न अंग जैसे ऑखें, चेहरा, हाथ-पैर एवं अन्य शारीरिक मुद्राएँ आदि के हाव-भाव शब्दों से भी कहीं अधिक कारगर ढंग से मनोदशा को व्यक्त करते हैं। अतः शारीरिक भाषा में सिर के इशारे, ऑखों की मुद्राएँ, वार्तालाप की भाषा, हाथ के हाव-भाव, उठने-बैठने के संकेत, खड़े रहने की कला, चलने का अन्दाज आदि समावेशित है। इस प्रकार प्रभावी व सफल संवाद में शाब्दिक भाषा के साथ-साथ शारीरिक भाषा तथा अशाब्दिक भाषा में संतुलन अथवा सामंजस्य स्थापित करना एक कला है। जो इसमें महारत हासिल कर जीवन को स्वाभाविक, सजीव एवं रोचक बनाता है। वह उज्जवल भविष्य की राह को आसान कर लेता है।

# सकारात्मक पत्रकारिता की ओर बढ़े कदम

■ श्री दीपक कुमार, प्रवक्ता, पत्रकारिता विभाग

''खींचो न कमानों को न तलवार निकालो, जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो''। अकबर इलाहाबादी का यह कथन यही दर्शाता है कि पत्रकारिता की ताकत, किसी तोप से कम नहीं है। पत्रकारिता की इसी ताकत ने, संसार भर के देशों के स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जनमानस में राष्ट्रीय चेतना जगाई और उन्होंने आजादी पाई।

यही सकारात्मक पत्रकारिता है, जो वर्तमान समस्याओं का समाधान सुझाए। व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण जिसका आधार हो। ऐसी पत्रकारिता जो प्रेरणाप्रद जीवन को दिशा देने वाली हो, जिसमें सेवा एवं साम्ंजस्य का भाव हो। जिसका लक्ष्य मनुष्य के नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों, सामाजिक-आध्यात्मिक मूल्यों को स्थापित करना हो। वर्तमान पत्रकारिता जो एक विषम दौर से गुजर रही है, उसे बचाना ही होगा। श्रेष्ठ मिशन से शुरू हुई पत्रकारिता जो व्यावसायिकता के दलदल में गहराई से धंस चुकी है, उसे इन्सानियत के पहरेदारों को इस स्थिति से उबारना ही होगा।

आज जब पत्रकारिता का एक बड़ा हिस्सा नकारात्मकता और सनसनी फैलाने का पर्याय बनता जा रहा है, ऐसे में सकारात्मक पत्रकारिता पर विचार करना आज के समय की मांग है। जिन मूल्यों, सामाजिक सरोकारों एवं आदर्शवादी स्वरूप को लेकर इसका आगाज हुआ था। जिसके कारण इसने ऐतिहासिक कीर्तिमान स्थापित किए, उन सबका इस तरह पृष्ठभूमि में चलते चले जाना बेहद ही पछतावा देता है। विज्ञापनों की चकाचौंध, खबरों को तोड़ - मरोड़ कर पेश करने की प्रवृत्ति, सनसनीखेज समाचार, पेड न्यूज, मीडिया ट्रायल, पत्र-पत्रिकाओं का महज एक प्रोडक्ट बन कर रह जाना, पत्रकारों का गिरता नैतिक स्तर, सम्पादकीय गरिमा में गिरावट इसके कटु सत्य हैं।

विभिन्न पत्रिका के सम्पादकों को सम्बोधित करते हुए एक बार भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वः डॉ० ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने कहा था, मीडिया में खबरें ऐसी नहीं हों जिसे पढ़कर लोगों में निराशा इस कदर घर कर जाए कि जीने का मन ही न करे, बल्कि खबरें ऐसी हों जो लोगों में आशा एवं उत्साह जीवन का संचार कर सकें। सकारात्मक पत्रकारिता का महत्व रेखांकित करते हुए २४ अप्रैल २०१६ को भारतीय प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी ने मन की बात में कहते हैं -''पॉजिटिव खबरें ही देश में सकारात्मकता का मौहाल बना सकती हैं। बड़े से बड़ा व्यक्ति, उत्तम से

उत्तम बात, अच्छे से अच्छे शब्दों में बढ़िया से बढ़िया तरीके से बताये, तो भी उसका उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना किसी अच्छी खबर का पड़ता है। अच्छी खबरें प्रेरणा का सबसे बड़ा कारण बनती हैं।'' इस प्रकार माननीय प्रधानमंत्री ने सकरात्मक पत्रकारिता कि दिशा में प्रयासरत मीडिया की सराहना की तथा इस दिशा में और सार्थक कदम उठाने की अपील की ।

भारतीय पुस्तकों यथाः- पत्रकारिता के विविध आयाम- वेद प्रताप वैदिक भाग-१ वर्ष २००२, सांस्कृतिक पत्रकारिता- डॉ. टीडीएस आलोक वर्ष २००३, मीडिया और संस्कृति - रूप चन्द गौतम वर्ष २००८, पत्रकारिता की लक्ष्मणरेखा- आलोक मेहता वर्ष २००८ में सकारात्मक पत्रकारिता के कुछ संकेत मिलते हैं। पत्रकारिता जगत् की जागृत दिव्य आत्माओं ने पत्रकारिता के नकारात्मक स्वरूप से लोहा लेने की, जोरदार पहल..... सकारात्मक पत्रकारिता की दिशा में प्रिण्ट, इलेक्ट्रॉनिक एवं न्यू मीडिया इन तीनों में ही कुछ न कुछ प्रयास निरंतर जारी है। पर न तो इनकी कहीं सूची उपलब्ध है और न ही कोई शोध कार्य हुए है।

इस दिशा में पत्रकारिता जगत् में कई प्रयोग हो रहे हैं प्रिण्ट मीडिया में- अखण्ड ज्योति, कल्याण, अग्निशिखा, विवेक ज्योति जैसी पत्रिकाएँ पूरी तरह सकारात्मकता से ओत-प्रोत हैं; तो वहीं लाइफ पॉजिटिव, अहा जिन्दगी जैसी पत्रिका सकारात्मकता के प्रसार में सहायक हैं। समाचार पत्रों में दैनिक भास्कर ने अनोखा प्रयोग शुरू किया जिसमें प्रत्येक हफ्ते की शुरुवात सोमवार को ''नो नेगेविटि डे'' यानी सिर्फ पॉजिटिव खबरें ही छापते है। हिन्दुस्तान पत्र भी फ्रण्ट पेज की बॉटम स्टोरी पॉजिटिव खबरें देता है। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया-जी न्यूज में आपकी न्यूज नाम से पॉजिटिव न्यूज बुलेटिन प्रत्येक दिन चलता है। डीडी न्यूज में गुड न्यूज इंडिया, एबीपी न्यूज में न्यूज पॉजिटिव तो टुडे ग्रुप गुड न्यूज टुडे नाम से पॉजिटिव खबरें चलाते है।

यदि हम सब इन्सानियत की पहरेदार आत्माएँ मिलकर, ऐसे प्रयास और अधिक संसार भर में करें, तो सर्वत्र साकारात्मकता का माहौल बनेगा। देश के चैथे स्तम्भ मीडिया अन्य तीन स्तम्भों कार्यपालिका, न्यायपालिका और विधायिका को असीम शक्ति देगा। और फिर विश्व नागरिक, विश्व समाज प्रगतिशील हो सकेगा। सकारात्मक पत्रकारिता का सम्यक स्वरूप स्पष्ट हो, वह खुलकर कार्य कर सके, इसके लिए भारत ही नहीं; वरन् विश्व भर में व्यापक उच्च स्तरीय प्रयास किए जाने चाहिए।

# भारतीय समाज में ग्रामीण पर्यटन की भूमिका

■ डॉ. उमाकांत इंदौलिया,
विभागाध्यक्ष, पर्यटन विभाग

भारत एक विशाल एवं लोकप्रिय देश है। जिसका अपना एक इतिहास है व अपनी महान परम्परा है। अनादि काल से यह सभ्य जीवन का गौरव रखता है, इसलिए यह विश्व की एक महान सभ्यता के रूप में गिना जाता है। यह एक जीती जागती सभ्यता है, जो आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। इसी कारण भारत यात्रा पर आने वाले पर्यटक इसके सांस्कृतिक समृद्धि से अछूते नहीं रह पाते। भारत देश में पर्यटन विकास के सभी पहलू जैसे-प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक स्थल, समुद्र, पहाड़, मैदान, ऐतिहासिक स्थल, आकर्षक गाँव विद्यमान हैं।

पर्यटन तो एक नैसर्गिक प्राण है जिसे पर्यटक महसूस करते हुए उसे जीवन में उतारने का प्रयास करते हैं। पर्यटन का स्वरूप, प्रकार और परिमाण तो विस्तृत और विशाल है, पर यह सत्य है कि पर्यटन को जीवन में स्थान देने से इन्सानी सोंच, समझ का दायरा विस्तृत हो जाता है। जहाँ एक ओर पर्यटक क्षेत्र की सांस्कृतिक गौरव- गरिमा, आचारण और व्यवहार को महसूस करता है वही दूसरी ओर वह अपने जीवन में इन नैसर्गिक गुणों को आत्मसात् भी करता हुआ चला जाता है।

भारत की संस्कृति यहाँ के गाँवों में बसती है तथा देश की ७४ प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। आज भी देश की अनुपम धरोहर को हमारे गाँव समेटे हुए हैं। भौतिकता की भागम-भाग से दूर, गाँवों में भारतीय संस्कृति की सभ्यता का वास है। शहरी भाग-दौड़ और शोर का प्रदूषण गाँवों में नहीं है। भारतीय गाँव अपने आँचल में अनेक ऐतिहासिक धरोहर, भिन्न-भिन्न जातियाँ, परम्परागत संस्कृति, रहन-सहन, जीवनशैली, प्राकृतिक सौंदर्य को समेटे हुए हैं। इसीलिए भारत के ग्राम, पर्यटन का एक नया माध्यम बन रहे हैं। गाँवों को नजदीक से महसूस करने, उसमें सुकून में कुछ पल बिताने, भारतीय संस्कृति से रुबरु होने, पर्यटकों के समूह राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक, गाँवों की ओर आकर्षित हुए हैं यही कारण है कि भारत में ग्रामीण पर्यटन की अवधारणा का तेजी से विकास हो रहा है। केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकारें भी ग्रामीण पर्यटन के विकास में अपना ध्यान आकर्षित कर रही हैं एवं इसके विकास के लिए कई नीतियाँ व योजनाएँ बना रही हैं।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार, प्रकृतिगत यात्राओं में २० प्रतिशत की वृद्धि हो रही है जो पूरे पर्यटन उद्योग की औसत वृद्धि से ५ गुना अधिक है। यह प्रकृतिगत यात्रा भी ग्रामीण पर्यटन का आधार बनती है। भारत में आर्थिक क्रान्ति आयेगी, तो गाँवों को केन्द्रित कर बनाई गई योजनाओं द्वारा ही आयेगी।

ग्रामीण पर्यटन के विकास से ग्रामीण क्षेत्रों में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक धरोहरों की देखरेख सम्भव हो सकी है। ग्रामीण क्षेत्रों में अन्य सांस्कृतिक परम्पराएँ, रीति-रिवाज और पर्यावरण को संरक्षण देने की बात पर विचार किया गया है। इससे ग्राम शहरीकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रिया में शामिल होने से बच जायेंगे और अपने मूल अस्तित्व में ही, अपने महत्व की व्याख्या करते नजर आयेंगे।

यदि 'ग्रामीण पर्यटन' की अवधारणा वर्तमान समाज ने न दी होती तो शायद शहरीकरण और औद्योगीकरण की इस अन्धी दौड़ में ग्राम अपना अस्तित्व खो बैठते और भविष्य में आने वाली पीढ़ियाँ केवल किताबों में, गँवों के बारे में कहानियाँ पढ़-पढ़ कर, उसके अस्तित्व और महत्व पर विचार विमर्श करते।

अतः आवश्यक है भारत के नागरिक भारत के अस्तित्व अर्थात् ग्रामों को बचाने का हर सम्भव प्रयास करें जैसा कि 'ग्रामीण पर्यटन' को और अधिक विकसित करके किया जा सकता है। ग्रामीण पर्यटन आधुनिक समय में अनेक प्रकार से महत्व रखता है, वह

पुनः वास्तविक प्राकृतिक वातावरण, संस्कृति में लौट चलने के लिए प्रेरित करता है, जहाँ शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शान्ति और आत्मिक सुख प्राप्त होता है।

ग्रामीण पर्यटन, पर्यटन का वह रूप है जिसमें ग्रामीण जीवन, कला, संस्कृति और प्राचीन विरासत देखने को मिलती है। साथ ही इससे ग्रामीण समुदाय का आर्थिक एवं सामाजिक विकास होता है। ग्रामीण पर्यटन तनाव मुक्ति एवं नई ऊर्जा हासिल करने का सशक्त माध्यम हैं। इस पर्यटन के द्वारा देश के विभिन्न ग्रामीण अंचलों में, विरासत में मिली परम्पराओं, रीति-रिवाजों और अनूठी कला एवं संस्कृति को पर्यटन के माध्यम से प्रकाश मे लाया जाता है।

लेन बी के अनुसार ग्रामीण पर्यटन के मूलभूत आधार इस प्रकार हैं - वह स्थान ग्रामीण क्षेत्र में स्थित हो; ग्रामीण कार्यपद्धति जैसे छोटे लघु उद्योग, खुला वातावरण, प्राकृतिक सान्निध्य, धरोहर, परम्पराएँ, सामाजिक गतिविधियाँ आदि होती हैं। वहाँ की प्रकृति-चरित्र परम्परागत पूर्ण हो; वह क्षेत्र विभिन्न प्रकार की मिश्रित अवस्था ग्रामीण परिवेश, इतिहास एवं अर्थव्यवस्था को प्रकट करता है।

समाज में संस्कृति के वर्चस्व को बनाये रखने के लिए ग्रामीण पर्यटन के द्वारा देश के विभिन्न ग्रामीण अंचलों में विरासत में मिली अनूठी संस्कृति एवं कला, प्राचीन ऐतिहासिक धरोहर, परम्परा व रीति-रिवाजों, वहाँ की जीवन शैली, प्राकृतिक वातावरण आदि का संरक्षण एवं विकास करने के साथ -साथ भारतीय संस्कृति को इस पर्यटन के माध्यम से प्रकाश मे लाया जा सकता है।

ग्रामीण पर्यटन एवं सामाजिक विकास - गाँवों के टिकाऊ विकास के लिए यह जरूरी है कि वहां रहने वाली आबादी की आय के अधिकाधिक अतिरिक्त स्रोत विकसित किये जाऐं। खेती और पशुपालन तो वैसे भी मौसम पर आधारित है। अच्छी बरसात होती है तो किसान के घर रौनक होती है और मौसम खराब होने पर उसके घर में मातम पसरा होता है। ऐसे में ग्रामीण समाज में उद्यमिता का विकास और इनके लिए अतिरिक्त आय का स्त्रोत्र ग्रामीण पर्यटन बन सकता है। सामाजिक विकास में ग्रामीण पर्यटन की महत्वपूर्ण भूमिका के आधारों को आइये समझने का प्रयास करते हैं।

आज भी देश में मुख्यतः ग्रामीण समाज है। यहाँ घरेलू अर्थव्यवस्था से उत्पाद वृद्धि करके तीव्र आर्थिक विकास को गति दी जा सकती है। ऐसे में विकास का बिन्दु ग्रामीण पक्षों पर ही केन्द्रित होना आवश्यक है। ग्रामीण पर्यटन से वहाँ के लोगों में उद्यमिता का विकास, व्यक्तिगत आय वृद्धि, क्रय शक्ति का सृजन, आर्थिक क्रियाकलापों में वृद्धि की जा सकती है। आज भी देश में पर्यटन का ९५ प्रतिशत व्यवसाय छोटे और मध्यम स्तर के उद्यमियों के हाथ में है, अतः पर्यटन विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में उद्यमियों, कुटीर उद्योग और आर्थिक विविधताओं में विशेष रूप से सहायक है। ग्रामीण पर्यटन से गाँव के लोगों का अपने धर पर ही विकास किया जा सकता है। पर्यटकों का आगमन जब गाँवों की ओर होता है तो उनकी आवभगत, उनके लिए सुविधाओं

और सेवाओं का विकास, स्थायी जन द्वारा आसानी से किया जाता है। ऐसे में ग्रामीण पर्यटन गांव के लोगों का शहरों की ओर पलायन को भी रोकता है।

कुरुक्षेत्र पत्रिका, मई २००८ के अनुसार - ग्रामीण पर्यटन से गाँवों के लोगों की हस्तकलाओं, परम्परागत कलाओं, शिल्प और विविध अन्य संगीत-नृत्य कलाओं का संवर्धन और संरक्षण किया जा सकता है। पर्यटकों के सम्मुख कला प्रदर्शन के बेहतर अवसर उपलब्ध करने के साथ ही ग्रामीण पर्यटन से गाँवों के उत्पाद को सीधा बाजार मिलता है। इससे सामाजिक विकास के समुचित अवसर सृजित होते हैं। दीर्घकालिक विकास के लिए जरूरी है कि विकास में स्थानीय लोगों की अधिकाधिक भागीदारी हो। ग्रामीण पर्यटन के अन्तर्गत प्रभावी सार्वजनिक-निजी भागीदारी के जरिए सामाजिक विकास के बेहतरीन अवसर उपलब्ध होते हैं।

भारत में ग्रामीण पर्यटन की अत्यधिक सम्भावनाऐं हैं। भारत की ७४ प्रतिशत जनसख्या यहाँ के ७० लाख गाँवों में रहती है। ऐसे में ग्रामीण पर्यटन का समुचित रूप से विकास, देश की अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के साथ-साथ, यहाँ के लोगों के जीवनस्तर में वृद्धि का बड़ा कारक बन सकता है। विश्व भर में औद्योगीकरण ओर विकास की परिणति के रूप में शहरीकरण का दबाव बढ़ा है। शहरीकरण के कारण लोगों में तनाव की प्रवृत्ति भी निरन्तर बढ़ी है। बढ़ते शहरीकरण और तनाव ने ही ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की दिलचस्पी बढ़ायी है। वैसे भी धरोहर एवं संस्कृति के प्रति बढ़ते आकर्षण, पर्यावरणीय जागरूकता, शान्त जीवनशैली के कारण ग्रामीण पर्यटन की नई शैली का समाज में विकास हुआ है। गाँवों में पर्यटक तनाव रहित और स्वस्थ जीवनशैली का अनुभव ले सकता है। इस अवधारणा ने ग्रामीण पर्यटन की एक औपचारिक किस्म का आकार ले लिया है।

ग्रामीण पर्यटन को और अधिक बढ़ावा देने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकारें इस क्षेत्र के सर्वांगीण विकास के लिए कटिबद्ध हैं। अगर ग्रामीण पर्यटन का विकास होगा, तो भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्वों का भी विकास होगा तथा सांस्कृतिक मूल्यों का विदेशों में प्रचार-प्रसार होगा। और भारत विकासशील देश से विकसित राष्ट्र बनने की ओर अग्रसर होगा। सरल शब्दों में कहें तो संस्कृति एवं ग्रामीण पयर्टन एक दूसरे के परस्पर पूरक है। हमारी संस्कृति का विराट् और वृहद् स्वरुप देखने का मन हो, तो हमें भी ग्रामीण पर्यटन की ओर उन्मुख होना ही पड़ेगा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात है कि ग्रामीण पर्यटन के विकास के नाम पर, गाँवों की सादगी, संस्कृति परम्पराओं, रीतिरिवाजों एवं इनके मूल स्वरूप से छेड़छाड़ न की जाए तभी ग्रामीण पर्यटन का विकसित स्वरूप सामने प्रकट होगा। कोशिश करें कि ग्रामीण पर्यटन के मर्म को समझे, सांस्कृतिक विरासत में अपने भविष्य को तलाशे। स्वयं अपने पैरों पर खड़े होकर दूसरों को भी रोजगार देने की ओर अग्रसर होगें, तो सामाजिक ऋण से भी उऋण होंगे और समाज के कर्मठ खेवनहार का गौरव भी स्वतः हस्तगत होता चला जायेगा।

ALUMNI ASSOCIATION
Dev Sanskriti Vishwavidyalaya

# Dev Sanskriti Vishwavidyalaya Introduces
# "Dev Sanskriti Alumni Association".

Register Here: www.dsvv.ac.in/alumni/

www.dsvv.ac.in

/dsvvofficial


Email: alumni.cell@dsvv.ac.in

**Room No. 18, 1st Floor, Patel Bhawan Dev Sanskriti Vishwavidyalaya**

Shantikunj-Gayatrikunj, Haridwar - 249411, Uttarakhand (INDIA)

# आदर्श जीवन का राजपथ - श्रीमद्भगवद्गीता

■ डॉ. असीम कुलश्रेष्ठ, प्रवक्ता, योग विभाग

आज की भाग दौड़ भरी जिन्दगी में मानव अपने आप को खो बैठा है। सुख-सुविधा की सभी वस्तुएँ प्राप्त होने पर भी उसे सुख की, चैन की नींद नसीब नहीं है। जिसके कारण वह तनाव, अवसाद आदि मानसिक परेशनियों को ढ़ो रहा है। उसे लगता तो है कि वह जीवन जी रहा है, लेकिन वह जीवन के श्रेष्ठ भाव से अनभिज्ञ है। उसका अपना, अपने प्रति कोई दृष्टिकोण नहीं रह गया है। ''आत्मा'' नाम की वास्तविक दृष्टि से अनभिज्ञ होने पर आज वह आत्महीनता के दौर से गुजर रहा है।

अपने वास्तविक स्वरूप का बोध न होने के कारण आज का मानव समुदाय थोड़ी सी भी असफलता झेल नहीं पाता है और आत्महीनता से ग्रसित हो आत्महत्या जैसा घृणित कदम उठाने में भी संकोच नहीं करता है। आत्महत्या आज सारे विश्व में मृत्यु के प्रथम दस कारणों में से एक है। पूरे विश्व में प्रत्येक वर्ष ८ लाख लोग आत्महत्या के कारण मरते हैं। (कल्पान १९९९) के अनुसार केवल संयुक्त राज्य अमरिका में प्रतिवर्ष ३२००० लोग आत्महत्या करते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन का भी यही विचार है कि आज आत्महत्या मृत्यु के पहले दस कारणों में से एक है। प्रसिद्ध मनोचिकित्सक कोलमेन (१९७४) द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार प्रायः २४ वर्ष से ४४ वर्ष की अवस्था में सबसे अधिक आत्महत्या की संभावना होती है, किन्तु राष्ट्रीय सर्वेक्षण के आधार पर आज सर्वाधिक आत्महत्या की आयु १५ से २४ वर्ष है।

मानव अपरिमित संभावनाओं का आगार है। युगद्रष्टा पं० श्रीराम शर्मा आचार्य ने उसे भटका हुआ देवता कहा है। पर मानव अपने अन्दर छिपी शक्तियों, संभावनाओं के इस अथाह भण्डार को जान नहीं पाता है। आज मानव की स्वयं के बारे में अधूरी समझ है, स्वयं के प्रति उसकी धारणा भ्रमपूर्ण या सही नहीं है। वह यह नहीं जानता की प्रकृति माँ ने उसे किन उपादानों से विभूषित किया है। इसी अज्ञानता के कारण वह अपनी इन शक्तियों का सदुपयोग नहीं कर पाता और दर-दर भटकता रहता है। यदि वह अपनी शक्तियों को जान ले एवं उसका सदुपयोग करना सीख ले तो समस्त विश्व में एक महान क्रान्ति जन्म ले सकती है। पर सबसे बड़ी विडम्बना यही है कि आज का मानव इन शक्तियों से अनजान, धन एवं पद-प्रतिष्ठा के पीछे भाग रहा है, जिसमें थोड़ी - सी असफलता भी उसे आत्महीनता से ग्रस्त कर आत्महत्या रूपी नरक में ढकेल देती है।

उर्दू के प्रसिद्ध कवि इकबाल ने व्यक्ति की दुनिया के बारे में समझा, लेकिन स्वयं के बारे में अनभिज्ञता को स्पष्ट रूप से कुछ इस प्रकार कहा है-

जिन्दगी कुछ और शै है, इल्म है कुछ और शै,
जिन्दगी सोजे जिगर है, इल्म है सोजे दिमाग,
इल्म में दौलत भी है, कुदरत भी है, लज्जत भी है,
एक मुश्किल है कि हाथ आता नहीं अपना सुराग।।

मनुष्य की आत्म-अवधारणा उसके भविष्य का निर्धारण करती है। आत्म-अवधारणा से यहाँ तात्पर्य, इन्सान की अपने स्वयं के प्रति अवधारणा है। जिसमें वह यह समझता है कि वह कौन है तथा क्या है। जब यह आत्म-अवधारणा सकारात्मक होती है, तो आत्मसम्मान, आत्मविश्वास जैसे गुणों का विकास होता है एवं इसके नकारात्मक होने पर आत्महीनता, ग्लानि, अपर्याप्तता जैसे भावों का विकास होता है। यह किसी व्यक्ति के जैविक एवं सामाजिक विकास एवं सफलता की सामान्य कड़ी है।

आज व्यक्ति के जीवन में स्वयं के प्रति अनभिज्ञता, आत्मघात का कारण बनती जा रही है, और वह भी तब, जब व्यक्ति तरुण या जवान कहलाता है। प्रसिद्ध मनोचिकित्सक कोलमेन (१९७४) के द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों के अनुसार, प्रायः २४ से ४४ वर्ष की अवस्था में अधिक आत्महत्या की संभावना होती है, किन्तु राष्ट्रीय सर्वेक्षण के आधार पर आज

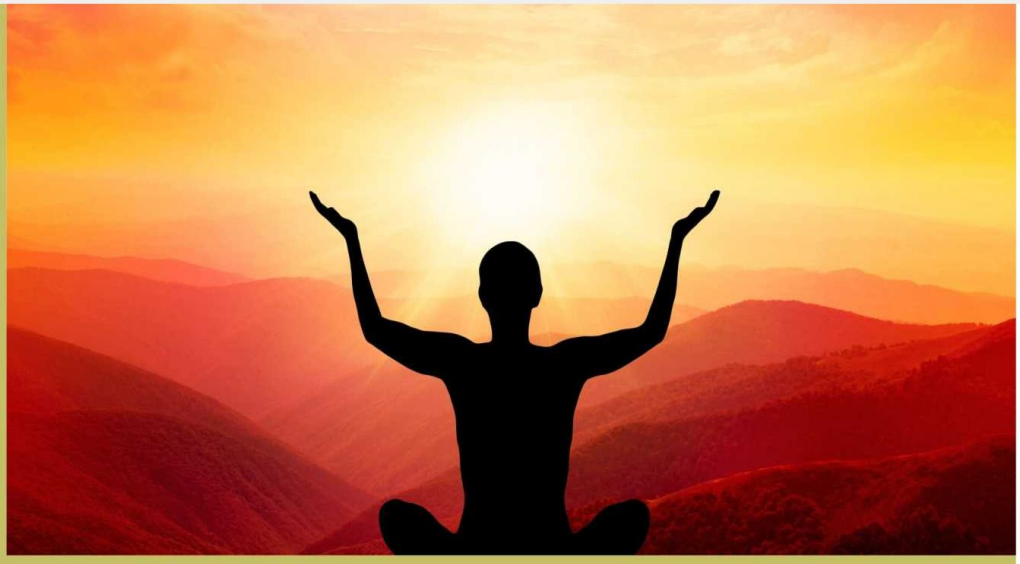

सर्वाधिक आत्महत्या की आयु १५ वर्ष से २४ वर्ष है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि जो जैसी श्रद्धा रखता है वह वैसा बन जाता है। उन्होंने अर्जुन को महाभारत के युद्ध के पूर्व उत्पन्न हुए अवसाद, आत्महीनता से मुक्ति दिलाने हेतु ही भगवान् की वाणी गीता कही थी।

आज के इस आत्म-अनभिज्ञता के वातावरण में श्रीमद् भगवद्गीता प्रासंगिक है। भगवान् की यह अमरवाणी मनुष्य को आत्मज्ञान की भूमिका में जागृत करती है। उसे आत्म अज्ञान से प्रतीत होने वाले जगत् की वास्तविकता से परिचित कराती है। उसे सच्चा अध्यात्म सिखाती है। अध्यात्म का अर्थ ही है आत्मा को जानना, स्वयं को परिष्कृत करना। श्रीमद्भगवत्गीता के द्वितीय अध्याय में इस आत्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुये आत्मा की अमरता का विस्तृत वर्णन है। साथ ही श्रीमद्भगवत्गीता के अन्य अध्यायों में आत्मा को आच्छादित किये तत्वों एवं उनके नाश के सन्दर्भ में वर्णन मिलता है।

श्रीमद्भगवत्गीता एक अलौकिक ग्रन्थ है। इस छोटे से ग्रन्थ में इतनी विलक्षणता भरी हुई है कि अपना वास्तविक कल्याण चाहने वाला किसी भी वर्ण, सम्प्रदाय, मत एवं आश्रम आदि का कोई भी मनुष्य क्यों न हो, इस ग्रन्थ को पढ़ते ही उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। प्रत्येक दर्शन, शास्त्र के भिन्न अधिकारी होते हैं परन्तु गीता की यह विलक्षणता है कि अपना उद्धार चाहने वाले सभी लोग इसके अधिकारी हैं।''

श्रीमद्भगवत्गीता आत्मचिन्तन का मार्ग प्रशस्त करती है। साधक की मनोभूमि के अनुरूप तो यह दर्शन सुलभ कराती ही है साथ की जिज्ञासु, आर्त या चिन्तक को तत्वदर्शन भी सहज सुलभ कराती है। दैहिक बन्धनों से दैविक दर्शन की अद्भुत अभिव्यक्ति के अनूठे सोपान का दूसरा नाम श्रीमद्भगवत्गीता है। यह ज्ञान भालाधा भी है और ज्ञान सूर्य भी। क्या बेहतर हो कि हम भी अपने आप को समझने के लिये शाश्वत-ज्ञान के पर्याय श्रीमद्भगवत्गीता का अवलम्बन करे। आत्म-जाग्रति के स्वर तो उन्मुख होने को तत्पर हैं बस हमें कदम बढ़ाना है। आत्मज्योति तो अवतरित हो ही गयी है, हाँ हमारे चिंतन और आचरण में उसकी अभिव्यक्ति शेष है। अपनी सीमित सोच को विस्तृत आकार देकर ही हम श्रेष्ठ और आदर्श पूर्ण जीवन जी सकते हैं, ऐसे में श्रीमद्भगवत्गीता हमें पगडंडियों से उबारकर, राजमार्ग पर अवश्य अग्रसर करेगी।

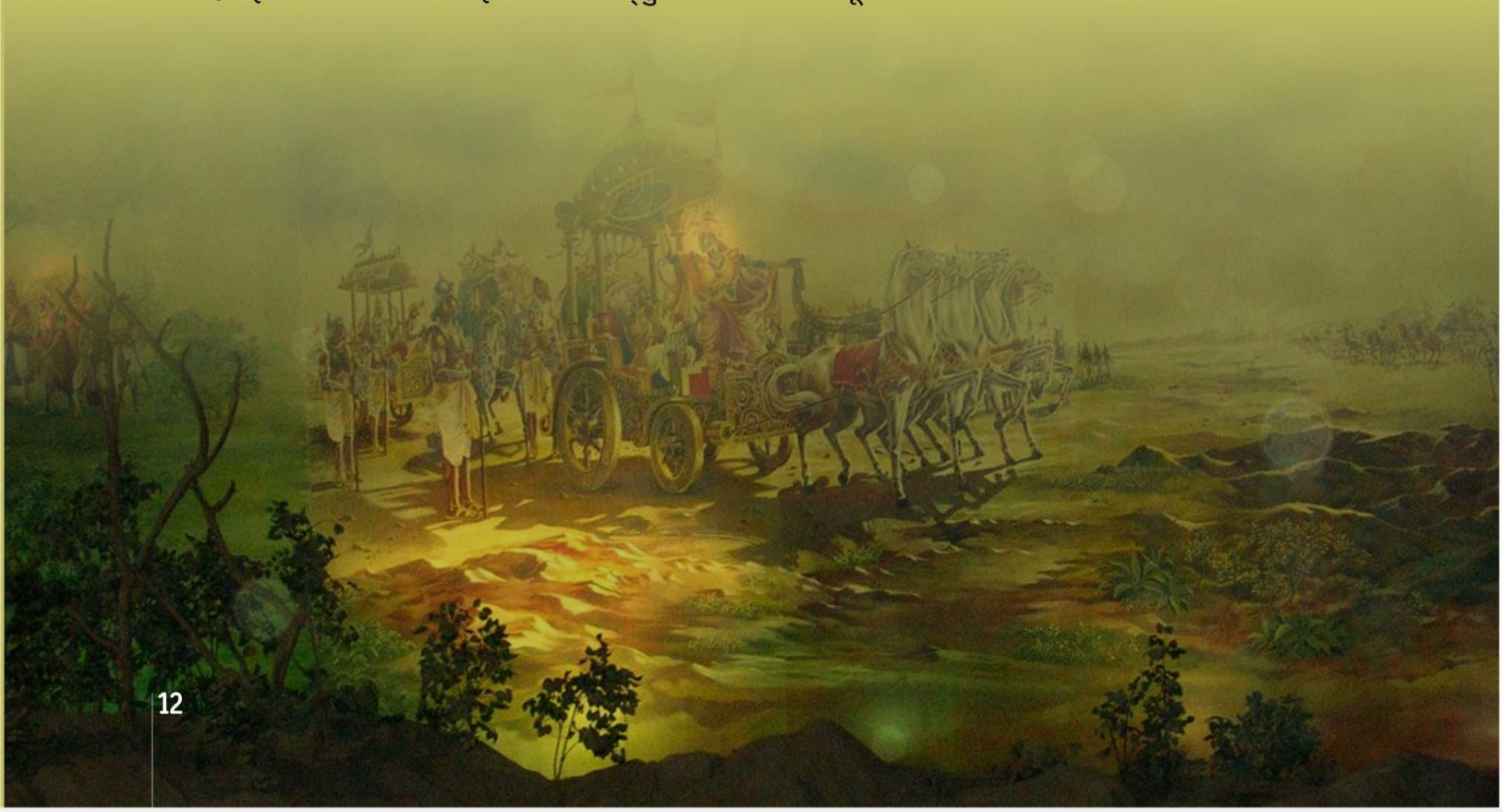

# संजीवनी विद्या का महान प्रशिक्षण

■ युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

युगऋषि, युगद्रष्टा पण्डित श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने अपनी आध्यात्मिक चेतना के द्वारा प्राचीन नालन्दा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय की तर्ज पर एक भावी आदर्श विश्वविद्यालय कैसा होना चाहिए। इस सम्बन्ध में अपनी दिव्य स्वप्नरूपी योजनाओं का सविस्तार दिग्दर्शन अखण्ड ज्योति पत्रिका (वर्ष १९६४, मार्च माह, पृष्ठ ५९ से ६३ तक) में कराया है। इसे पुनः अविकल रूप में प्रस्तुत करने का यह छोटा सा प्रयास है। हम आशा करते हैं कि यह लेख विज्ञजनों, शिक्षाविदों, आचार्य-आचार्याओं सहित हम सबके लिए पठनीय, विचारणीय, अनुपालनीय एवं दिशाबोधक होगा।

संसार में जितने भी प्रसाधन हैं, उनका उपयोग जीवन को सुखी बनाने के लिए किया जाता है। उस सम्बन्ध में ज्ञान और विज्ञान का अन्वेषण और प्रशिक्षण सर्वत्र तीव्र गति से हो रहा है, पर यह जीवन जिसके लिए यह सब हो रहा है, किस प्रकार किया जाये? इस ज्ञान के संबंध में चारों ओर अन्धकार ही दिखाई पड़ता है। छोटे-मोटे उद्योग और श्रम संस्थाओं तक में ट्रेण्ड लोगों की आवश्यकता होती है। स्कूलों में ट्रेण्ड अध्यापक रखे जाते हैं। रेल, तार, डाक, पुलिस, फौज आदि सभी विभागों में ट्रेनिंग एक अनिवार्य आवश्यकता मानी जाती है। इसके बिना उन कार्यों को ठीक तरह कर सकना बुद्धिमान् व्यक्तियों के लिए संभव नहीं हो सकता। यही बात जीवन जीने के सम्बन्ध में भी लागू होती है। सभी शिल्प, उद्योगों, कौशलों और सरकारी क्रियाकलापों की अपेक्षा जिन्दगी जीना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। इसकी ट्रेनिंग की कोई सुव्यवस्था न हो, तो उसे फूहड़ मन से किये जाने की ही संभावना रहेगी। आज अशिक्षितों की तो कौन कहे, सुशिक्षित धनी, बुद्धिमान् और सत्ताधिकारियों व्यक्तियों में से ऐसे बहुत कम दिखाई पड़ते हैं, जो जिन्दगी जीना ठीक प्रकार से जानते हों।

जीवनकला की जानकारी के अभाव में अधिकांश व्यक्ति दीन, दुःखी और पतित स्थिति में पड़े हुए मौत के दिन पूरे करते हुए देखे जाते हैं। यह मान्यता सही नहीं कि जिसके पास धन-ऐश्वर्य अधिक होगा, वह सुखी रहेगा, वरन् सच तो यह है कि जिसे जिन्दगी जीना आता होगा, वह स्वल्प साधनों में भी आदर्श, आनन्द और उल्लास के साथ रह सकेगा। ऋषियों ने स्वेच्छा से गरीबी का वरण करके लोगों को यह सिद्ध किया था कि कितनी भी साधनहीन स्थिति में रहते हुए उच्च कोटि की प्राप्ति कर सकना संभव हो सकता है।

संसार में जितने भी ज्ञान, कला और कौशल हैं, उनमें सर्वोपरि स्थान जीवनकला का है। जिसे यह आती है, उसे हर घड़ी, हर परिस्थिति में केवल आनन्द, उल्लास और सन्तोष का स्वर्गीय सुख मिलता रह सकता है। दुःख इस बात का है कि बुद्धिमान् समझा जाने वाला मानव प्राणी जीवन विद्या की उपयोगिता और आवश्यकता को न तो अनुभव कर रहा है और न उसके लिए कोई प्रयत्न ही इस दिशा में चल रहे हैं। अनेक विषयों की शिक्षा के अनेक विद्यालय मौजूद हैं; पर जीवन जीने की कला सिखाने वाला एक भी विद्यालय कहीं न हो, यह कितने आश्चर्य और खेद का विषय है।

प्राचीनकाल में प्रत्येक गुरुकुल इसी शिक्षा का उद्देश्य पूरा करता था। पुस्तकीय ज्ञान तो उतना ही रहता था, जितना सामान्य जीवन में काम आये। शेष तो वहाँ सब कुछ वही सिखाया-पढ़ाया जाता था, जिसके आधार पर मनुष्य अपनी प्रत्येक समस्या को सुलझाने, प्रत्येक कठिनाई को पार करने और प्रत्येक परिस्थिति में आगे बढ़ने में सफल हो सके। आज इस प्रकार की शिक्षा का कोई प्रबन्ध कहीं भी न होने से मानव जाति की कितनी बड़ी हानि हो रही है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

राष्ट्र निर्माण के लिए जैसा समाज बनाना है, वह परिवार निर्माण के आधार पर ही बनेगा, जिस प्रकार परिवारों के समूह का नाम समाज है, इसी प्रकार व्यक्तियों के समूह को परिवार कहते हैं। परिवार व्यक्तियों के समूह से बनता है। इसीलिए व्यक्ति निर्माण से परिवार

निर्माण और उससे समाज निर्माण, राष्ट्र निर्माण या युग निर्माण का उद्देश्य पूरा हो सकता है। व्यक्ति निर्माण के द्वारा ही हम राष्ट्र निर्माण के लक्ष्य तक पहुँच सकते हैं। व्यक्ति निर्माण के लिए इस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा नितान्त आवश्यक है, जिसके आधार पर मानव जीवन का उद्देश्य, गौरव, सदुपयोग और व्यवहार समझा जा सके और उसे दैनिक व्यवहार में कैसे उतारा जाये? यह सीखा जा सके। नई पीढ़ी का भारत निर्माण कर सकने में वे माता-पिता ही समर्थ होंगे, जिनने जीवन कला को सीखा-समझा होगा। परिवार में ऐसा श्रेष्ठ वातावरण रख सकना इन जीवन दर्शन के ज्ञाता दम्पति के लिए भी संभव होगा, जिसमें पले हुए बालक युग निर्माण एवं महामानव के रूप में अपना यश अजर-अमर रख सके।

युग निर्माण का महाभियान आरम्भ करते हुए हमें संजीवनी विद्या की सर्वांगपूर्ण शिक्षा व्यवस्था का प्रबंध भी करना पड़ेगा। मोटे रूप में इन विषयों की भूमिका मात्र समझा देने से, पर आज की परिस्थितियों में किसी व्यक्ति को कौन आदर्श, किस प्रकार जीवन में उतारना चाहिए, इसकी बारीकियाँ जब तक न समझायी जाएँगी, कार्यान्वित करने के व्यावहारिक तरीके अब तक न समझाये जायेंगे, तब तक महानता के मार्ग पर चलने में जो अड़चनें आती हैं, उनको सुलझाया न जा सकेगा। इसलिए ऐसे प्रशिक्षण की अनिवार्य आवश्यकता है। व्यक्तिगत जीवन की असंख्य समस्याओं को सुलझाने और प्रगति पथ पर वस्तुतः बढ़ चलने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

हमारे मस्तिष्क में ऐसे विश्वविद्यालय की कल्पना है, जिसमें चार वर्ष का पाठ्यक्रम हो। उसमें मानव जीवन की प्रत्येक कठिनाई को हल करने और हर परिस्थिति के व्यक्ति को अपने ढ़ंग से आगे बढ़ने के लिए जो भी मार्गदर्शन आवश्यक हो, वह सब उस अवधि में सिखा दिया जाये। बिगड़ते हुए स्वास्थ्य को कैसे सुधारा जाये? और सुधारे हुए स्वास्थ्य को कैसे बढ़ाया जाये? इस संबंध में शरीर की भीतरी और बाहरी जानकारी चिकित्सा, परिचर्या, आहार, व्यायाम आदि प्रत्येक स्थिति में उपयुक्त परिपूर्ण जानकारी करायी जाये। खेलकूद, शास्त्र-संचालन, तैरना, घुड़सवारी आदि सभी बातें उस विद्यार्थी को भलीभाँति अभ्यास में रहना चाहिए। मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा के लिए चिन्ता, भय, निराशा, शोक, आवेश, उत्तेजना, ईर्ष्या, कुढ़न, अहंकार आदि कुविचारों से बचने और यदि उनके अभ्यास में आ गये हों, तो उन्हें किस प्रकार हटाया जाये, इसकी मनोविज्ञान के अनुरूप ऐसी विधियाँ बताई जायें, जिससे मानसिक दुर्गुणों का सरलतापूर्वक समाधान हो सके। इसी प्रकार स्वभाव में मधुरता, सहनशीलता, नम्रता, सज्जनता का समावेष कैसे हो? और आशा, उत्साह, साहस, धैर्य, दूरदर्शिता, उदारता, संयम, नियमितता जैसे श्रेष्ठ गुण कैसे अभ्यास में आयें, इनका क्रियात्मक साधन कराके शिक्षार्थी को इस योग्य बनाया जाये कि उसे मनस्वी और श्रेष्ठ पुरुषों की श्रेणी में गिना जा सके।

इन्द्रियाँ जहाँ हमारे लिए अभिन्न मित्र हैं, वहाँ असंयत होने पर वे शत्रु का रूप धारण कर लेती हैं। स्वास्थ्य को नष्ट और मन को उद्विग्न करके मनुष्य को किसी काम का नहीं छोड़ती। असंयत जिह्वा इन्द्रिय और कामेन्द्रिय ने कितने होनहारों को धूलि चटाने के लिए विवश कर दिया इसकी बड़ी विषम करुण कथा है। इन्द्रियों के उफान को कैसे रोका जाय? और संयमी रहकर कैसे तेजस्वी, मनस्वी बना जाये, उसका उपायों समेत विधान जानकर कोई उस मार्ग पर चले, तो गृहस्थ रहकर योगी-तपस्वियों की तरह शरीर और मन से परिपुष्ट बना जा सके।

समय का वर्गीकरण, विभाजन, दिनचर्या, कायक्रम एवं व्यवस्था बनाकर एक-एक क्षण का कैसे सदुपयोग किया जाये ? जिससे महापुरुषों की भाँति इन चैबीस घण्टों में ही इतनी प्रगति की जा सके कि दूसरों को जादू एवं दैवीय वरदान की तरह प्रतीत हो। हर वस्तु की उचित व्यवस्था रखी जाये, तो वह बहुत दिन टिकेगी और सुन्दर रहेगी। धन को बजट बनाकर खर्च किया जाये, एक-एक पाई के सदुपयोग का ध्यान रखा जाये तो कम आमदनी में भी बहुत व्यवस्थित, सन्तुष्ट एवं विकसित जीवन जिया जा सकता है। फिजूलखर्ची को परले सिरे की मूर्खता

मानकर उसे कठोरतापूर्वक रोकना ही बुद्धिमानी है। सफाई, सुन्दरता का सबसे सस्ता, सरल और श्रेष्ठ तरीका है। शरीर, वस्त्र, मकान, सामान आदि सभी को स्वच्छ, सुन्दर और कलात्मक रखा जाये, तो अभिनव आकर्षण इन्हीं अपनी दैनिक वस्तुओं में से फूट पड़ेगा। इन तथ्यों को कई लोग जानते तो हैं, पर उन्हें स्वभाव का अंग नहीं बना पाते। चाहते तो हैं कि हम इस प्रकार बनें, पर वैसा हो नहीं पाता। प्रस्तावित विश्वविद्यालय में इन सभी विषयों का मनोविज्ञान, शरीरशास्त्र, समाजशास्त्र, नीति एवं विज्ञान के आधार पर ऐसा प्रशिक्षण दिया जाये कि व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाने के मार्ग की बाधाओं को आसानी से हल किया जा सके।

आस्तिकता को भिखमंगापन का आडम्बर रचने की वस्तु न रहने देकर आत्मा को महान् आत्मा, परमात्मा बनने की, नर को नारायण रूप में परिणत करने की प्रचण्ड प्रक्रिया बनाया जा सकता है। पर आज तो वह उतने विकृत रूप में है कि पूजा पाठ करने वालों की मानसिक एवं अन्य प्रकार की स्थिति और भी गई बीती होती है। जबकि होना यह चाहिए था कि उपासना करने वाले का आत्मबल दूर से ही चमकता और वे स्वभावतः दूसरे लोगों की अपेक्षा अधिक उत्कृष्ट दृष्टिगोचर होते। पर वे वैसे होते नहीं, इससे यही सिद्ध होता है कि उनकी आस्तिकता असली नहीं, नकली है। आस्तिकता का स्वरूप और साधन सीखा जा सके, ऐसी शिक्षा जिस विद्यालय में सिखायी जा सके, वह निश्चय ही बहुत महत्वपूर्ण हो सकता है।

वासना, तृष्णा, आलस्य एवं पाप-तापों से मुक्त जीवन ही परलोक में मुक्ति का माध्यम बन सकता है। जिसने उस लोक में अपने लिये स्वर्गीय परिस्थितियाँ बना लीं, उस लोक में वे स्वर्ग प्राप्ति के अधिकारी होंगे। देवताओं के अनुग्रह के अधिकारी वे बनेंगे, जो देवताओं के अनुमोदन मार्ग पर चल रहे होंगे। ईश्वर की कृपा उन्हें मिलेगी, जिन्होंने घट-घट वासी परमात्मा के प्रति अपनी श्रद्धा और सद्भावना का परिचय दिया होगा। उपासना में कर्मकाण्ड नहीं, आंतरिक शुद्धि की प्रधानता मानी जाती है। इन तथ्यों को यदि भली प्रकार समझा जा सके, तो परलोक बनाने के इच्छुक, सद्गति पाने की अभिलाशी, भ्रम जंजालों से निकलकर उस मार्ग पर चले, जिस मार्ग पर चलने से वस्तुतः आध्यात्मिक प्रगति का आनन्द मिल सकता हैं। ऐसा सद्ज्ञान ही किसी को अध्यात्म के प्रत्यक्ष सत्परिणामों से समुचित रीति से लाभान्वित कर पायेगा। इस अभाव की पूर्ति के लिए शास्त्रों और ऋषियों की आदि परम्परायें जिस विद्यालय में सिखायी जायें, उसी से अध्यात्मवाद की सच्ची सेवा बन पड़ेगी।

माता-पिता और वयोवृद्धों का सम्मानपूर्ण परिपालन, भाई- बहिनों के प्रति, राम-भरत जैसा स्नेह जिस घर में न रहे उसे प्रेत- पिशाचों का निवास, श्मशान ही कहा जाएगा। गृहस्थ का स्वर्ग वहीं है, जहाँ पति-पत्नी के बीच अटूट विश्वास, स्नेह, सद्भाव रहता है। एक दूसरे के पूरक अंग बनकर रहते हैं और एक दूसरे की त्रुटियों को निबाहते हुए उसे उदारता, क्षमा, सहिष्णुता एवं सहायता की भावना रखते हुए ऊँचा उठाने और आगे बढ़ाने का प्रयत्न करते रहते हैं। जिस घर की अर्थव्यवस्था पर पत्नी का नियंत्रण रहता है, उस घर से लक्ष्मी कभी विदा नहीं होती। जहाँ मतभेद के कारणों पर खुले मन से विचार विनिमय होता रहता है और समस्याओं को सुलझाने के लिए समाधान किये जाते रहते हैं वहाँ न तो मनोमालिन्य रह सकता है और न असन्तोष पनप सकता है। जिन घरों में मुस्कान, विनोद, आशा और उत्साह की धाराएँ चेहरों पर थिरकती रहती हैं, वहाँ कोई भी अभाव अखरता नहीं। बालकों का शरीर तो माता-पिता के शरीरों में से बनता ही है साथ ही उनका मन, स्वाभाव एवं आदर्श भी बहुत कुछ उन्हीं की मनोभूमि में से बन जाता है। पाँच वर्ष की उम्र तक बालक अपने स्वभाव और संस्कारों का आधा भाग परिपक्व कर चुका होता है। उसे यह शिक्षण किसी प्रवचन से नहीं, वरन् अभिभावकों के स्वभाव-संस्कारों से उपलब्ध होता है। इसलिए विचारशील माता-पिता का कर्तव्य हो जाता है कि वे आहार-विहार, पालन-पोषण कर व्यावहारिक ज्ञान तो रखें ही, साथ ही अपने आपको उन सद्गुणों से सम्पन्न भी करें, जिन्हें बालकों में देखने की उनकी इच्छा है। सुसन्तति का निर्माण अपने आप में एक अत्यन्त विशद्, गम्भीर और महत्वपूर्ण विकास है। इसकी जानकारी न होने से कुसंस्कारी सन्तान से प्राप्त होने वाले दुःखों को अभिभावक भोगते हैं और अपनी नादानी का पश्चाताप मरते तक करते रहते हैं। कोई विद्यालय यदि गृहस्थ को स्वर्ग की तरह रचना कर सकने की शिक्षा दे सके, तो निःसंदेह उससे पृथ्वी पर स्वर्ग के अवतरण की भूमिका प्रस्तुत हो सकती है।

चारों ओर फैली हुई दुष्टता को सहन नहीं किया जा सकता है। भलमनसाहत को कमजोरी मानकर गुण्डागर्दी और भी पनपती है, इसलिए उसके शमन के लिए संघर्ष भी आवश्यक है। सरकार ने कानून, पुलिस, न्यायालय, जेल, फाँसी आदि की व्यवस्था दुष्टता से निपटने के लिए बनाई है, पर इतना ही पर्याप्त नहीं, जनता को भी उससे निपटने का संघर्ष करना होता है। अन्यथा वह कानून की पकड़ से बचकर आतंक के सहारे अपनी जड़ जमाये बैठी रहती है। दुष्टता के विरुद्ध संघर्ष का भी, सीमा-शत्रुओं से लड़ने की तरह एक विशेष युद्धशास्त्र है; जिसमें साम, दाम, दण्ड, भेद के चारों हथियार प्रयोग करने

अनुसार हम चलेंगे या मन हमारे अनुसार चलेगा यह ऊहापोह तो जग जाहिर है। ''एकोऽहम बहुस्यामि'' का संकल्प परमात्मा के मन में ही उठा होगा। 'अहम् ब्रहास्मि, शिवो अहम् सत्चित्तानन्द' अहम् जैसे वेदवाक्य मन की ही उपज हैं। मन है तो हम हैं और मन ही तो वहम् है। यह अहम् से वहम् का मार्ग या फिर हम से मुक्ति का मार्ग मन के धरातल पर सम्भव है। कभी सम्पूर्ण जगत् आपको ईश्वर रचना लगने लगता है तो मन कहता है ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा''(ब्रह्म सूत्र१.१.१) और जब आप और ईश्वर में कोई भेद ना दिखे तो मन सहज ''गुह्यं प्रविस्तव आत्मनो ही तादर्शनाथ (ब्रह्म सूत्र १.२.११) गाने लगता है। वह और मैं एक ही तो हैं मैं दृश्य वह अदृश्य मैं साँस वह स्पन्दनए मैं स्वर तो वह अनुगूँज मैं दर्शन तो वह सुदर्शन मैं पथिक तो वह प्रदर्शक। यह है मन की गति और गतिज। इस स्तर पर अगर आपका संवाद होने लगे तो निश्चित मानिये सामाजिक भवबन्धन फिर आपको रोक नहीं पाएँगे। हर सुर आपको विश्व ब्रह्माण्ड का नाद सुनाएँगे। हर अटखेलियाँ आपको प्रभु की लीला लगेगी। हर घटने वाली हलचल आपको समष्टिगत प्राण का स्पन्दन प्रतीत होंगी।

वैसे तो भ्रम मुक्ति के अनेक उपाय हैं- कुछ सरल भी है और कुछ कठिन भी। कुछ में श्रम लगता है कुछ में साध्य। किसी में मन को मानना पड़ता है किसी में स्वयं अवतरित होते हैं, आराध्य। मन की गति को समझकर चलना समझदारी है। मन को तदनुरूप बनाकर रखना सफलता है। मन को दिशाधारा देना विजय है। समझदारी, सफलता और विजय - तीन आयाम ही तो हैं जिन पर मन डोलता रहता है। समझदारी कब नासमझी में बदल जाए मन की करामात है। विजय के पश्चात् समूची जगती को अपने कदमों में झुकाने की सनक मन से ही शुरू होती है। मन चञ्चल तो है और सिद्ध साधक भी। मन प्रवहमान् तो है पर स्थिर चट्टान भी। मन में प्राण तो है पर महाप्राण बनने की सामर्थ्य भी। मन को दोष देना बेकार है - यह तो वही बात हो गयी की निशाना लगाना आता नहीं और बन्दूक को दोष देते रहें। भोजन करना आता नहीं और थाली को दोष मढ़ते रहें। सत्य यही की मन भी व्यक्ति की शक्ति के आगे नतमस्तक है। मन की क्या मजाल जो आप के कहे अनुसार ना चले। उसे मनाइये, समझाइये और जरूरत पड़े तो उसके प्रति कठोर व्यवहार भी कीजिये। ''अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते''। यही है भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को समाधान। हे अर्जुन ! मन को अभ्यास और वैराग्य से ही सम्भाला जाता है। जब सहजता हो तब भी असहजता का भाव आपको निर्लिप्त करता है। जब सब कुछ हो पास और उस समय वैराग्य का अभ्यास आपको पुष्ट करता है।

यूँ तो संसार में समझ-समझ का फेर है, वरना मन से तो यहाँ हर कोई सिकन्दर है। हर कोई विश्व विजेता है। पर यह जीत सांसारिक ना होकर अपने आप पर होती तो क्या बात थी? अगर यह सिकन्दर अपनी सोच, समझ और व्यवहार को मूर्त रूप दे सकता तो क्या बेहतर होता? अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अपने कृत्यों की बाढ़ इतनी शान्ति से कीजिये कि सफलता शोर मचा दें। विरोधियों की समझ से कहीं ऊपर जाकर जब आप अपनी बाजी खेलते हैं, तो दृश्य और दर्शक दोनों अचम्भित हो जाते हैं। मन का भ्रम हमारी नियति तय करेगा, या फिर हम अपने मन को मनाने का प्रयास करेंगे, यह आपको तय करना है। मन की गुलामी करना है या फिर मन के नियन्ता होना है, यह निर्णय आपको करना है। ओ निर्लिप्त, निर्विकार आत्मा! - जरा खुद से संवाद करना तो सीखिए। आपके हृदय में विराजित परमात्मा, आपको सभी समाधान स्वतः देने लगेंगे। बस अपने मन की आवाज को सुनना सीख जाइये। प्रभु आपका सर्वत्र कल्याण करेंगे।

# जब मौन बोल पड़ेगा

■ ब्रह्मवर्चस

एकान्त, शान्ति और चिदाकश। सोच और समझ का पूर्णविराम। जीवन की गागर में सागर सामने की सामर्थ्य से रुबरु होना, हमेशा से सुखद है। तीर्थ के प्राण ही उसकी पहचान हैं। आपके पास ज्ञान का भंडार क्यों ना हो पर यदि वह जीवन में ना उतारा हो, तो वह सिर्फ भार कहलायेगा। अपने आप को समझने का प्रयास तो सभी करते हैं, और कोशिश करते हैं कि दूसरे भी उसे, उसी अर्थों में देखें और समझें। पर सत्यता इससे परे हैं। जीवन की अनेक उपलब्धियाँ, जिस तरह सबकी समझ में नहीं आती है, ठीक वैसे ही सबकी उन्नत-उत्कृष्ट जीवन साधना, बहुतों के लिए मात्र एक कौतुहल का विषय रह जाती है।

ज्ञान की पहचान, मौन से है। विद्वता का दर्शन है कि कम शब्दों में अपनी बात को समेटकर कह दिया जाए। लम्बे और स्वादानुसार परोसे जाने वाले वक्तव्य तो मजमा, नुमाइश और भीड़ के लिए उचित है। सत्यता से परे, ऐसे विद्वानों का व्यक्तिगत जीवन खोखला और निःसार होता है। उन्हें खुद नहीं मालूम होता की वह संसार में ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं, या अपने खोखलेपन का तमाशा। सार्थकता के खोल में वह सिर्फ खोखला और निरर्थक जीवन जी रहे होते हैं। उपयोगी होने के भ्रम में वह, निरुपयोगिता की दुहाई देते फिर रहे होते हैं। पानी जितना गहरा होगा, उसकी थाह लेना उतना ही मुश्किल होता है। व्यक्तित्व कितना गहरा है, यह तो व्यक्ति के सम्बोधन से पहचान लिया जाता है।

सत्य यही शब्दों में प्राणों का संचार ना हो तो वह शब्द अपने ही कानों में गूंजने से लगते हैं। 卐शब्द बोले नहीं, करें।卐 यही वह वाक्य है जो जीवन की समस्त कार्यपद्धतियों पर लागू होता है। बातों से पेट नहीं भरता, शब्दों से घर नहीं चलते। हाँ! कुछ दिन तक आप संसार को बेवकूफ बना सकते हैं और जब लोग आपकी असलियत जान जाते हैं, तो उन्हें फिर आपसे ऊब हो जाती है। आपको देखकर लोग रास्ता बदलने लगते हैं। यह है जीवन की सहज सच्चाई, जिससे लोग जानबूझकर मुँह चुराते हैं। क्या अच्छा होता कि आप कम बोले, आवश्यकता होने पर ही सलाह दें। जरूरी हो तो ही लोगों के मध्य अपने मंतव्य साझा करें और नकारात्मकता तो बिलकुल भी नहीं परोसें। इससे आपके हल्के होने की, अपने आप ही पहचान हो जाती है। दूसरों की नुक्ताचीनी निकालने वालों की भीड़ में सकारात्मकता को विकसित करें।

सकरात्मकता को अपने जीवन शैली में शामिल कर लें। ज्ञान की मशाल जल रही है और जलती ही रहेगी। ज्ञान के पुरोधा पहले भी आए और आते रहेंगे। पर नाम उन्हीं का सार्थक होगा, जो प्राण से पूर्ण होगें। यहाँ शब्दों की बाजीगरी से बचने की बात कही जा रही है। आपके व्यक्तिगत जीवन की धमक, सम्पूर्ण व्यक्तित्व में परिलक्षित होती है। आपके प्राणों का असर, प्रदर्शन और वक्तव्य में झलक जाता है। जीवन की प्रयोगशाला में वह ही सफल और निष्णात होता है, जो सोच और समझकर बोलता है। वाचाल और बाजीगरी करने वालों की तो बन आती है। शब्दों में प्राण नहीं, व्यक्तित्व में जान नहीं और फिर भी ऐसे लोग प्रदर्शन से बाज नहीं आते और एक दिन ऐसे लोग औंधे मुँह गिरे हुए पाए जाते हैं। बेहतर हो

मौन को समझें, उसको अपने जीवन का हिस्सा बनायें। मौन में समाहित प्राण है- प्राणों की अविरल धारा ही बेहतर मौन को जन्म देती है। जहाँ मन में कोलाहल है उन्हें मौन नहीं भाएगा। जहाँ अन्तरंग में तूफान है वहां मौन नहीं टिकेगा। उन्हें अजीब सी घुटन, बंधन नजर आएगा- यह मौन। मौन तो चिन्तन के चिराग से अपने आप को रोशन करने की कवायद है। उसकी चरम अवस्था में आप दर्शक, दृश्य और द्रष्टा, तीनों स्तरों को एक साथ जी सकते हैं।

ईश्वर प्रदत्त जीवन, कोलाहल से दूर होना चाहिए। जीवन की भागदौड़ से दूर जाने की बात यहाँ नहीं कही जा रही है। अपने कार्य को निपुणता से पूर्ण करते हुए, आप मौन को जीवन में जी सकते हैं। अब कोलाहल से दूर कैसे हो सकते हैं? यह यक्ष प्रश्न जैसा दिखता है। पर सत्यता यही है कि- कुछ क्षण के लिए ही सही, अपने आप से मिलने का अवसर सबको कहाँ मिलता है? मिलता भी है, तो उस खाली मौन से डर लगता है। जिसे दूर करने के लिए टेलीविज़न, मोबाइल का हम सहारा लेते हैं। यह मौन हमें काटने दौड़ता है। पर सत्य यही है कि माँ की कोख़ में भी सिर्फ मौन था और मरने के बाद सिर्फ मौन होगा। जग के पहले प्रहर में भी प्रखर मौन था और जग के पार भी मुखर मौन ही होगा।

मौन सौगात है परमात्मा की। उनसे पूछिए जो सतत-अनवरत बकबक करते रहते हैं। उन्हें चुप होने को लोग कहते हैं, पर वह मान ही नहीं पाते। कई बार अतिशय ज्ञान, इन्सान को वाचाल बना देता है तो कई बार आधा-अधूरा ज्ञान भी, अपनी अल्पता को छुपाने की कवायद समान दिखता है। और फिर आप मानसिक अवसाद से ग्रसित इन्सान को, सड़क पर अपने से बात करते देख सकते हैं। सबकुछ ठीक नहीं है- अगर आप ज्यादा बोल रहे हैं। अपने प्रदर्शन को थोड़ा ठहराव देना-मौन हैं। अपनी अतिशय सक्रियता को ठहराव देना-मौन है। सतत् चलती हुई गाड़ी को थोड़ी देर के लिए कहीं विश्राम देना- मौन है। मौन तो इश्वरीय प्रतिबिम्ब है। परमात्मा का सार्थक स्वरूप मौन में ही तो है। मन्दिर की मूर्ति आपसे बात नहीं करती - फिर भी विश्वास है की ईश्वर सुन रहा है। चाहे आप नंदी के कान में कहें, या फिर चर्च में जाकर कन्फेस करें, एक सोच जो अन्तरंग में उभरती है कि हमने अपनी बात ईश्वर से कह दी है। एक सुकून सा अंतरंग में छाने लगता है। यह मौन के स्वर ही, चैतन्यता का प्रथम बोध है। और ज्यों-ज्यों यह मौन के स्वर मुखरित होने लगेंगे, यह मौन आपसे बात भी करेगा और जीवन के प्रश्नों का समाधान भी करेगा।

अब प्रश्न यही की हम कब मौन हों और कब बातें करें? अवसर को पहचानना भी एक कुशलता है। यहाँ अवसरवादी बनने की बात नहीं कही जा रही है। यहाँ समय की नजाकत और उसे पहचानने की बात पर जोर दिया जा रहा है। सबका अपना दायरा है और सबकी अपनी समझ है। परम पूज्य गुरुदेव, परम वंदनीया माताजी के समक्ष कहने और सुनने की बात नहीं थी, उनकी स्फुरित चेतना को सभी कुछ आभास हो जाता था। जीवन की इस गहराई को मौन में महसूस किया जा सकता है। मौन दर्पण है आपकी साधनात्मक गहराई का। मौन प्रकटीकरण है - आपके भीतर अवतरित भगवद् चेतना की। मौन तो अनुगूँज है उस अनाहत नाद की, जो समूची सृष्टि चक्र का उद्गम स्रोत है।

अन्तरंग की गहराई में ज्यों-ज्यों उतरेंगे तो पायेंगे- शरीर के सभी आवश्यक अंग मौन होकर काम कर रहे हैं। पशु पक्षी सभी तो मौन हैं- हाँ ! जरूरत होने पर कोलाहल करते हैं- गाय जरूरत होने पर रंभाती है, शेर आवश्यकता अनुसार दहाड़ता है। पेड़-पौधे भी बात करते हैं, पर उसकी भाषा को समझने के लिए मौन चाहिए। जीव-जन्तु भी आपके मौन से प्रभावित होते हैं और उनकी चेतना पर भी, आपके इसी मौन का प्रभाव पड़ता है। महर्षि रमण के आश्रम में सभी पशु पक्षी, जीव-जन्तु भी समाधिस्थ होते थे। मौन उन्यायक भी है और पथ-प्रदर्शक भी। मौन ईश्वरीय चेतना का घटाटोप है जो कभी-कभी उतरता है। पर जब उतरता है तो दैदिप्तमान सूर्य की भाँति तेजस्विता, चन्द्रमा की भाँति शीतलता, पहाड़ की तरह स्थिरता और समुद्र की गहराई स्वतः दे जाता है। मौन एक अवसर है- समझें। मौन साधक की ऊष्म कणिका है-निखारें। मौन एक निमिष है चेतना में कुछ घटने का- पहचानें। मौन एक अविरल प्राणप्रवाह है, बहुत कम अवसरों पर यह रूपान्तरण भी कर जाता है। प्राण के संसार में, प्राणियों के मध्य रहते हुए, अपने अन्तरंग से मिलने और समझने के अवसर-मौन को प्रखर होने दें।

मौन को ऐसे समझें- एक विशिष्ट अनुभूति जो आपके भीतर, ऊपर आने को लालायित है उसे उचित अवसर तो दें। एक ऐसी सिद्धि - जो अपने प्रकटीकरण के साथ, आपको नैसर्गिक रोमांच देगी, उसे बाहर आने की अनुमति तो दें। मौन एक विशिष्ट क्रांति है, जो अगर सफल हो गयी, तो मौन बोल पड़ेगा। मौन एक अनुपम प्रयोग है, जो अगर सटीक बैठ गया, तो मौन बोल पड़ेगा। क्या अब भी आप उसे निखरने और प्रकट होने का अवसर नहीं देंगे? आइये! इसके मर्म को समझें, इसे जीवन में गूँथे और अपने मौन के सहज प्रकटीकरण को आनन्द का अवसर बनाएँ।

# जीवन यात्रा

■ डॉ. अरुणेश पराशर, विभागाध्यक्ष, पर्यटन विभाग

एक अबूझ-सा प्रश्न हम सब के सामने मुँह बाये खड़ा हो जाता है कि जीवन अगर अमूल्य धरोहर है तो हम इसका उपयोग क्यों नहीं करते? पीड़ा, सन्ताप, दुख, चिन्ता, भय ही हमें जीवन में क्यों दिखाई पड़ते हैं। जो सुखी दिखता है, वो हमें भाग्यशाली लगता है। यह अलग बात है कि जो सुखी दिख रहा है, वह अपनी जिन्दगी में हैरान-परेशान भी हो सकता है। बेहोशी से जिन्दगी जीते हुए हम इसके अधिकतम पलों को खो देते हैं। समय के अन्तराल में हम निराश और एकाकी हो जाते हैं। वास्तव में जिन्दगी को कलाकार की भाँति जीना चाहिए। एक समग्र जीवन शैली को अपनाना चाहिए। इसलिए हमारे पास जिन्दगी में जो कुछ भी है, वह श्रेष्ठ बनने के लिए है। पूज्य० गुरुदेव (आचार्यजी) कहते हैं- किसी के व्यक्तित्व के लिए या उसके विकास के लिए जो अनिवार्य परिस्थितियाँ हैं, वह परमात्मा ने उसे प्रदान की हुई हैं।

सत्य यही कि व्यक्ति के पास कलाकार की दृष्टि होनी चाहिए और अगर वह इस नजरिये से जिन्दगी को समझ लेगा, जिन्दगी का उपयोग कर लेगा तो वह अवश्य सफल होगा। जिन्दगी की गहराई में जायें तो स्पष्ट होगा कि एक खालीपन हमारे अन्दर है और हम उसे बाहर खोजते रहते हैं। हम साधन-सुविधा जुटाकर खालीपन को कम करना चाहते हैं, लेकिन वह खोखलापन तो जस का तस बना ही रहता है।

आज अगर कोई प्रतिभा सम्पन्न है तो जरूर उसमें कुछ विशेष समझ रही होगी। उदाहरण के लिए, अगर अपने भावों को शब्दों में ढालने की कला है, तो वह लेखक या कवि हो सकता है। कवि को कविता लिखने हेतु कल्पना शक्ति चाहिए। इसके विपरीत अगर किसी में कल्पना शक्ति नहीं है तो उसके पास सुख-साधन के कितने ही अखबार लगा दीजिये, वह कविता का सृजन नहीं कर पाएगा।

यह सर्वविदित है कि मनुष्य के भीतर एक विकसित चेतना निवास करती है। उसे हर बात की समझ है। अगर मनुष्य अपनी समझ का उपयोग करे, तो वह ईश्वर प्रदत्त अनुपम उपहारो से लाभान्वित हो सकता है। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं- प्रत्येक आत्मा मूल रूप से ब्रह्म है। अगर जीवन पर गहरी दृष्टि डालें तो यही निष्कर्ष निकलता है कि जो संभावनाएँ हैं या जिन संभावनाओं से हमने जन्म लिया है उसे पूरा करें।

हमें अपने अस्तित्व का अध्ययन करना होगा। हमें शून्यता के साथ-साथ अपने दायरे को बढ़ाना होगा। अपने शरीर एवं मन को एक प्रयोगशाला बनाकर, उसमें जीवन के विभिन्न प्रयोग करने ही होंगे। जीवन की दैनिक आवश्यक्ताओं की पूर्ति करते हुए हमें जीवन को विज्ञान सम्मत बनाना होगा। अपने आस-पास हो रही सूक्ष्म, स्थूल एवं कारण सम्बन्धी घटनाओं को समझ कर, मौन के विभिन्न प्रयोग करने होंगे। असल में यह ही आध्यात्म है। यही हमें चेतना के साथ-साथ इसके विभिन्न स्तरों का परिचय बतायेगा।

इस जीवन में बहुत कुछ सम्भव है। इसी कारण मनुष्य जीवन श्रेष्ठ है। अगर हमें कुछ जानना है, तो पहले स्वयं को जानने का प्रयास करना होगा। ऋषिवाणी भी कहती है सम्यक मनसा, वाचा, कर्मणा। मनुष्य मन से जो सोचता है तदनुसार उसकी वाणी होती है। जैसी वाणी होगी, वैसा ही आचरण होगा और जैसा आचरण होगा, वह वैसा ही बनता चला जायेगा। इस तरह हम अपने चिन्तन, चरित्र और व्यवहार की त्रिआयामी तकनीक से संभावनाओं के बहुत करीब पहुँच सकते हैं।

अपने व्यक्तित्व को अग्नि के साँचे में धीरे-धीरे पकाकर, हम अपने लक्ष्य व संभावनाओं को नई जीवन ऊर्जा दे सकते हैं। याद रहे की जीवन ऊर्जा का बहाव इस क्रम से पल-प्रतिपल हो रहा है। हमें उस दिव्य ऊर्जा को ग्रहण करने लायक अपना शरीर एवं मन बनाना है। धैर्यता के साथ रस ऊर्जा का अवतरण जीवन के बहुत से आयामों को रचनात्मक गति प्रदान करेगा। इसके बाद हमारा जीवन ज्योति की भांति प्रकाशवान् होकर, वाह्य चेतना को आत्मचेतना की ओर गतिमान् करेगा।

आत्मचेतना के खिलने से सम्पूर्ण व्यक्तित्व चमक उठेगा। सुबह की स्वर्णिम् बयार से जीवन गढ़ने लगेगा। हमारा हर कर्म जाग्रत् होकर, हमें जीवन के रहस्यों से परिचित कराने लगेगा। जीवन की परतें स्वतः ही खुलने लगेगी। परतों के खुलने से बहुत से दिव्य अनुभवों की श्रृंखलायें, जीवन वसन्त को हमारे हृदय में विराजमान कर देंगी। जीवन आनन्दित बयारों से महक उठेगा। हर ओर भीनी-भीनी सुगन्ध छा जाएगी।

तो फिर प्रतिक्षा किस बात की है? क्यों न अपना पहला कदम इस अनजाने रास्ते पर बढ़ायें। यहाँ हम ही अपने मित्र होंगे। इस सफर में 'एकला चलो रे' की भावना, जीवन के अमूल्य उपहारों से परिचित करायेगी और अगर यह भाव जीवन में चरितार्थ हो गया, तो फिर आत्मिक प्रगति के स्वर स्वतः फूटने लगेंगे।

# khadi
# खादी

"Khadi stands for simplicity, not shoddiness. Khadi delivers the poor from the bonds of the rich and creates a moral and spiritual bond between the classes and the masses. It restores to the poor somewhat of what the rich have taken from them",

"Mahatma Gandhi"

## Our Key Products:

Dress Materials, Carpets, Shawls,
Pooja Aasanas, Foot Mats,
Kurta, Stoles etc.

Over 20,000 mt. of Cloth Production

Over 1,000 mt. of Shawl Production

Over 70 candidates trained in last quarter

DEV SANSKRITI
VISHWAVIDYALAYA

Gayatrikunj, Shantikunj,
Haridwar - 249411 (Uttarakhand)
www.dsvv.ac.in

# मन का भ्रम

■ ब्रह्मवर्चस

संसार की अपनी गति समय और ऊर्जा है। जो न तो कभी परिवर्तित होती है और न विलुप्त। सदियों से संसार का अपना नियम है. शाश्वत और निर्विकार। निर्लिप्त और निराकार। लोग इसे कुछ भी नाम दे सकते हैं। कोई इसे परमात्मा का स्वरूप मान लेता है और कोई इसे निराकार भाव में शक्ति जान बैठता है। सच यही कि सोच का नाम कोई भी दीजिय - इसे कोई फर्क नहीं पड़ता। इसका होना उतना ही सत्य है जैसे सूरज का उगना चन्द्रमा का अपनी आभा फैलाना। यह टूटते तारे की कहानी नहीं है - यह है- एक सहज और सरल रवानी। जिसका विरला ही साक्षी बन पाता है। द्रष्टा बनकर कोई कोई ही साथ चल पाता है। ज्यादातर लोग एक भ्रम में पड़ जाते हैं। होना या ना होना। दिखना या न दिखना। समझना या फिर नासमझ का व्यवहार। यह जो भी सोच है एक द्वन्द्व के साथ इन्सान की साँस में बस जाती है। इसे माया का नाम दिया गया और सृष्टि का भेद भी इसे समझा जा सकता है।

संसार एक गति है और व्यक्ति उसकी इकाई। संसार का परिवर्तित होना एक नियति है और इंसान का उसके अनुरूप बदलना प्रकृति। नियति प्रकृति को बदल देती है और प्रकृति सदैव से नीति नियन्ता के अधीन रही है। संसार में समूह मन भी हैए जिसे दूसरे शब्दों में समष्टिगत मन कह सकते हैं और व्यक्ति होने के नाते एक इसकी छोटी इकाई व्यक्तिगत मन भी है। व्यक्तिगत मन समष्टिगत मन के अधीन काम करता है। अमूमन आम आदमी सामाजिक भय नीति और लोग क्या कहेंगे के आधार पर जीता और मरता है। सामाजिक बन्धन भी इसे कह सकते हैं या फिर समाज की सोच को व्यक्तिगत सोच पर हावी हो जाना इसे दूसरे शब्दों में कह सकते हैं। बिरले ही होते हैं जो समाज को अपनी सोच के अनुसार दिशा और दशा दे पाते हैं। नैसर्गिक प्रतिभा के धनी या फिर आध्यात्मिक ऊर्जा से सराबोर व्यक्तित्व हीए सामाजिक मन को प्रभावित कर पाते हैं। समष्टिगत मन को चलाना इतना आसान भी नही है। चेतना के उच्चस्तरीय आयाम पर जाकर अपने इर्द-गिर्द बनते और बिखरते समाज के मन को साध पाना दुष्कर कार्य तो है पर अंभव नहीं। चेतना की सामर्थ्य अबूझ है। कौन कहाँ और किस प्रकार से समाज को नयी राह दिखायेगा यह तो कहा नहीं जा सकता परन्तु समय-समय पर विविध चैत्य पुरुष और नैसर्गिक शक्तियाँ समाज को नयी और प्रेरणादायक सोच देती हैं इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता।

इन्सानी सोच का दायरा सीमित है और असीमित भी। इन्सानी समझ कभी मन्दबुद्धि सी दिखती है तो कभी अतीन्द्रिय क्षमता सम्पन्न प्रदर्शित होती है। इन्सानी व्यवहार को अव्यावहारिक भी कह सकते हैं और सामजस्य की पराकाष्ठा भी। सत्य तो यही है की इन्सान की उत्पति हर असम्भव को सम्भव बनाने के लिए ही हुयी है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार. यह चतुष्पदों की संरचना भेद में विभेद देखने के लिए की गयी है। गुण कर्म और व्यवहार की त्रिवेणी इन्सान को सदैव चलते फिरते प्रयागराज बनाने की रही है। आशा और अपेक्षा का द्वयए इन्सान को चित्त के आरोहण पर स्थिर करने के लिए है। और फिर अंतिम पड़ाव है - मन। मन को अविचल निर्विकार और निर्लिप्त करने का प्रयास तो सदियों से चलता आया है और चलता ही रहेगा। एक मन ही तो है जो भक्त और भगवान् को जोड़े रखता है। यही मन व्यक्ति को शक्ति से बाँधे रखता है। मन न होता तो चित्य और चिन्तन नहीं होते। मन न उपजता तो द्वन्द्व और भेद कहाँ होते मन का प्रस्फुटन अगर संसार में नहीं होता तो आकृति प्रकृति का भेद कहाँ से आता। मन ना होता तो वाणी का विकार या मधुरता कैसे उपजती मन अगर नहीं बनता तो फिर स्रष्टा की सृष्टि अधूरी रह जाती। भेद की दीवार समाज के पैरोकार व्यक्तित्व का आयना रिश्तों का मायना समझ का आभाव सम्बन्धों का प्रभाव साधक की आकुलता प्रभु की व्याकुलता कहाँ दिखाई पड़ती।

इससे एक बात तो तय है की चाहे व्यक्ति हो या ईश्वर समष्टि हो या स्वयं परमेश्वर मन सब के भीतर समाहित है। मन का होना ध्रुव सत्य सा प्रतीत होता है। हाँ ! मन के

अनुसार हम चलेंगे या मन हमारे अनुसार चलेगा यह ऊहापोह तो जग जाहिर है। ''एकोऽहम बहुस्यामि'' का संकल्प परमात्मा के मन में ही उठा होगा। 'अहम् ब्रहास्मि, शिवो अहम् सत्चित्तानन्द' अहम् जैसे वेदवाक्य मन की ही उपज हैं। मन है तो हम हैं और मन ही तो वहम् है। यह अहम् से वहम् का मार्ग या फिर हम से मुक्ति का मार्ग मन के धरातल पर सम्भव है। कभी सम्पूर्ण जगत् आपको ईश्वर रचना लगने लगता है तो मन कहता है ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा''(ब्रह्म सूत्र१.१.१) और जब आप और ईश्वर में कोई भेद ना दिखे तो मन सहज ''गुह्यं प्रविस्तव आत्मनो ही तादर्शनाथ (ब्रह्म सूत्र १.२.११) गाने लगता है। वह और मैं एक ही तो हैं मैं दृश्य वह अदृश्य मैं साँस वह स्पन्दनए मैं स्वर तो वह अनुगूँज मैं दर्शन तो वह सुदर्शन मैं पथिक तो वह प्रदर्शक। यह है मन की गति और गतिज। इस स्तर पर अगर आपका संवाद होने लगे तो निश्चित मानिये सामाजिक भवबन्धन फिर आपको रोक नहीं पाएँगे। हर सुर आपको विश्व ब्रह्माण्ड का नाद सुनाएँगे। हर अटखेलियाँ आपको प्रभु की लीला लगेगी। हर घटने वाली हलचल आपको समष्टिगत प्राण का स्पन्दन प्रतीत होंगी।

वैसे तो भ्रम मुक्ति के अनेक उपाय हैं- कुछ सरल भी है और कुछ कठिन भी। कुछ में श्रम लगता है कुछ में साध्य। किसी में मन को मानना पड़ता है किसी में स्वयं अवतरित होते हैं, आराध्य। मन की गति को समझकर चलना समझदारी है। मन को तदनुरूप बनाकर रखना सफलता है। मन को दिशाधारा देना विजय है। समझदारी, सफलता और विजय - तीन आयाम ही तो हैं जिन पर मन डोलता रहता है। समझदारी कब नासमझी में बदल जाए मन की करामात है। विजय के पश्चात् समूची जगती को अपने कदमों में झुकाने की सनक मन से ही शुरू होती है। मन चञ्चल तो है और सिद्ध साधक भी। मन प्रवहमान् तो है पर स्थिर चट्टान भी। मन में प्राण तो है पर महाप्राण बनने की सामर्थ्य भी। मन को दोष देना बेकार है - यह तो वही बात हो गयी की निशाना लगाना आता नहीं और बन्दूक को दोष देते रहें। भोजन करना आता नहीं और थाली को दोष मढ़ते रहें। सत्य यही की मन भी व्यक्ति की शक्ति के आगे नतमस्तक है। मन की क्या मजाल जो आप के कहे अनुसार ना चले। उसे मनाइये, समझाइये और जरूरत पड़े तो उसके प्रति कठोर व्यवहार भी कीजिये। ''अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते''। यही है भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को समाधान। हे अर्जुन ! मन को अभ्यास और वैराग्य से ही सम्भाला जाता है। जब सहजता हो तब भी असहजता का भाव आपको निर्लिप्त करता है। जब सब कुछ हो पास और उस समय वैराग्य का अभ्यास आपको पुष्ट करता है।

यूँ तो संसार में समझ-समझ का फेर है, वरना मन से तो यहाँ हर कोई सिकन्दर है। हर कोई विश्व विजेता है। पर यह जीत सांसारिक ना होकर अपने आप पर होती तो क्या बात थी? अगर यह सिकन्दर अपनी सोच, समझ और व्यवहार को मूर्त रूप दे सकता तो क्या बेहतर होता? अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। अपने कृत्यों की बाढ़ इतनी शान्ति से कीजिये कि सफलता शोर मचा दें। विरोधियों की समझ से कहीं ऊपर जाकर जब आप अपनी बाजी खेलते हैं, तो दृश्य और दर्शक दोनों अचम्भित हो जाते हैं। मन का भ्रम हमारी नियति तय करेगा, या फिर हम अपने मन को मनाने का प्रयास करेंगे, यह आपको तय करना है। मन की गुलामी करना है या फिर मन के नियन्ता होना है, यह निर्णय आपको करना है। ओ निर्लिप्त, निर्विकार आत्मा! - जरा खुद से संवाद करना तो सीखिए। आपके हृदय में विराजित परमात्मा, आपको सभी समाधान स्वतः देने लगेंगे। बस अपने मन की आवाज को सुनना सीख जाइये। प्रभु आपका सर्वत्र कल्याण करेंगे।

# कत्लगढ़ साहिब - शहादत का अनुपम तीर्थ

■ डॉ. ऋतुध्वज सिंह सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग

हम देते हैं खंजर उसे तीर समझना।
नेजे की जगह दादा का तुम तीर समझना ।
जितने मरें इस से उन्हें बे-पीर समझना।
जख्म आए तो होना नहीं दिलगीर समझना।
जब तीर कलेजे में लगे सी नहीं करना।
उफ! मुँह से मेरी जान कभी भी नहीं करना ।

जी हाँ ! ये पंक्तियाँ साक्षी हैं उस बलिदान की, जिसमें एक पिता ने देश की मिट्टी और अस्मिता पर मर मिटने के लिए, एक नहीं, दो नहीं, अपने चार-चार बेटों को एक साथ न्योछावर कर दिया। यह प्रमाण हैं भारत के उस गौरवपूर्ण इतिहास का जिसकी अनुगँज आज भी इस देश के चप्पे-चप्पे में सुनायी पड़ती है। इन्हीं गौरवमयी गाथाओं में से एक है सिख गुरु गोविन्द सिंह जी के बलिदान की गाथा, जिन्होंने राष्ट्र धर्म की रक्षा में अपने साथ-साथ, अपने पूरे परिवार का उत्सर्ग कर दिया, परन्तु धार्मिक अधीनता को स्वीकार नहीं किया।

भारत के पंजाब राज्य के रूपनगर (रोपड़) जिले में स्थित एक नगर है - चमकौर। यह जिले में तहसील का दर्जा रखता है और घनी आबादी वाला क्षेत्र माना जाता है। इसी नगर के मध्य में स्थित है कत्लगढ़ी साहिब गुरुद्वारा। वैसे तो यह पूरी नगरी ही गुरु गोविंद सिंह जी को समर्पित है। इस नगरी में छोटे-बड़े कुल ७ गुरुद्वारे हैं। गुरुद्वारा श्री रंजीत गढ़ साहिब जो कि चमकौर के पूर्वी भाग में स्थित है तथा सन् १७०३ में गुरुगोविन्द सिंह और मुगलों के मध्य हुए भीषण युद्ध की स्मृति में बनाया गया है। इसी नगर के में स्थित है दूसरा प्रसिद्ध गुरुद्वारा गुरुद्वारा श्री दमदम साहिब। यह वह स्थान है जहाँ गुरु गोविंद सिंह अपने ४० शिष्यों सहित, दूसरे चमकौर युद्ध के समय कुछ देर विश्राम के लिए रुके थे। इस गुरुद्वारे का निर्माण सर्वप्रथम सन् १९३० में सरदार भाई श्री धर्म सिंह ने करवाया था, जिसका जीर्णोद्धार सन् १९६३ में भाई श्री पियारा सिंह ने करवाया।

चमकौर का तीसरा और महत्वपूर्ण गुरुद्वारा है गुरुद्वारा श्री गढ़ी साहिब या

श्री गढ़ साहिब। यह गुरुद्वारा उस स्थान पर स्थित है जहाँ बुद्धि चंद और गरीबू सिंह (कालान्तर में जगत सिंह और रूप सिंह) की वह कच्ची हवेली थी, जिसका उपयोग गोविन्द सिंह ने मुगलों से युद्ध के लिए किया था। सन् १७६४ में सरहिन्दी के पतन के पश्चात् जब यह क्षेत्र सिक्खों के अधिकार में आया, तब इसका निर्माण सिख समुदाय की धार्मिक धरोहर के रूप में हुआ तथा कालांतर में पटियाला के महाराजा करम सिंह ने यहाँ पर एक गुरुद्वारे का निर्माण कराया। गुरुद्वारा श्री कत्लगढ़ साहिब, चमकौर का सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण गुरुद्वारा है। यह गुरुद्वारा उस स्थान पर स्थित है, जहाँ ६ और ७ दिसम्बर, सन् १७०४ को मुगलों और गोविंद सिंह जी के मध्य युद्ध हुआ था।

चमकौर का गौरवशाली इतिहास है जो केवल सिक्ख ही नहीं, बल्कि पूरी हिन्दू संस्कृति के लिए प्रेरणादायक एवं पूज्यनीय है। भारतीय मनीषा का यह विलक्षण गौरव गीत, कितनों के लिए परिचित है यह कहना तो सम्भव नहीं है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि ऐसे अनगिनत चमकौर, इस धरा के गर्भ में सुषुप्त हैं, जिन्हें पुनः जीवन्त और जागृत करने की महती आवश्यकता है।

चमकौर का युद्ध -

पौष कृष्ण सप्तमी की रात्रि, सिक्ख धर्म के इतिहास में काली रात के नाम से विख्यात है। यही वह रात्रि है जब सिखों के गुरु गोविंद सिंह को अपना साम्राज्य आनंदपुर साहिब छोड़कर, रात्रि के अंधेरे में भागना पड़ा था। सन् १७०४ के आसपास मुगलों का दमन चरम पर था। हिन्दुओं को बलात धर्म परिवर्तन कराने तथा इस्लाम न मानने वालों पर अनेक प्रकार की प्रताड़ना करना, समान्य दिनचर्या का अंग हो गया था। ऐसे में सिक्खों के दसवें गुरु गोविंद सिंह ने इसका विरोध किया था तथा मुगल शासन के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया था। अथक परिश्रम के पश्चात् भी जब मुगल उन पर हावी नहीं हो पाए, तो उन्होंने तीन राज्यों की संयुक्त सेना लेकर आनन्दपुर किले के चारों ओर से घेर लिया। चमकौर के युद्ध में उन्हें एक पल के लिए लगा था कि वह गुरु गोविन्द सिंह को पकड़ने में कामयाब हो जायेंगे; लेकिन वह अपने ४० साथियों के साथ दुश्मन को उसी के हाथों परास्त करने में सफल हुए थे।

जब गोविन्द सिंह को पकड़ने के सभी प्रयास विफल हो गए, तब औरंगजेब ने सरहिंद के नवाब वजीर खान की अगुवाई में अन्य मुगल राजाओं की लम्बी-चौड़ी १० लाख की फौज भेजी। फरमान यही था कि गुरु गोविद सिंह को जिंदा या मुर्दा पकड़कर लाया जाए। वज़ीर खान की अगुवाई में आयी फौज ने ६ महीनें तक आनंदपुर साहिब (पंजाब) की सरहदों को घेरे रखा। मगर अंदर जाने की हिम्मत नहीं कर पाये। साथ ही उनका मानना था कि जैसे ही नगर के अन्दर राशन-पानी समाप्त हो जाएगा गुरु गोविन्द सिंह स्वयं आकर सर्मपण कर देंगे। मगर ऐसा सोचना मुगलों की नासमझी साबित हुई।

५-६ दिसंबर १७०४ की रात्रि, गुरु गोविन्द सिंह अपने सैनिकों के साथ चुपचाप आंनदपुर से कूच कर गये। यद्यपि वज़ीर खान को इसकी सूचना शीघ्र ही मिल गई और उसने उनका पीछा किया। रात्रि के अंधेरे में सिरसा नदी के तट पर मुगलों और सिक्खों के मध्य भयानक युद्ध हुआ। अधिकांश सिक्ख मारे गए। कुछ नदी पार करने के प्रयास में बह गए। इसी स्थान पर गोविंद सिंह अपने परिवार से अलग हो गए। उनकी पत्नी, माता गुजरी, अपने दो पुत्रों जोरावर सिंह और फतेह सिंह के साथ दिल्ली की ओर निकल गई और गोविंद सिंह जी अपने दो पुत्रों अजित सिंह, जुझार सिंह तथा ४० सि1ख सिपाहियों के साथ सिरसा नदी पार करने में सफल हो गए।

तकरीबन २०० मील की यात्रा कर के गोविंद सिंह जी रूपनगर में स्थित सरहिंद नहर के किनारे बसे चमकौर नामक स्थान पर पहुँचे जहाँ स्थानीय लोगों ने उनका स्वागत किया। वहीं थोड़ी दूर पर एक स्थानीय निवासी स्वामी बुद्चंद (जगत सिंह) की कच्ची गढ़ी (किलानुमा हवेली) थी जो एक ऊँचे टीले पर स्थित थी। गोविंद सिंह जी को को यह हवेली सामरिक दृष्टि से बहुत उपयोगी लगी। उन्होंने वहीं अपने साथी सैनिकों के साथ रुकने का निर्णय किया। जगत सिंह पहले तो डरा; परन्तु भाई के समझाने पर मान गया और अपनी हवेली गुरू गोविन्द सिंह को सौंप दी। जल्द ही गुरू गोविन्द सिंह ने सभी ४० सैनिकों को बचे हुए अस्त्र के साथ, छोटे-छोटे दलों में बाँट दिया।

५ सिक्ख योद्धाओं के आठ दल बनाए गए। चार दल किले के ऊपर चढ़कर चारों दिशाओं से किले की सुरक्षा मे तैनात कर दिये गये। तीन दल किले के द्वार पर युद्ध की प्रतीक्षा में लगे। आठवाँ जत्था लेकर, अपने दोनों पुत्रों सहित, गुरु गोविंद सिंह स्वयं किले के मध्य में स्थित हुए और मुगलों की प्रतीक्षा करने लगें। शीघ्र ही मुगल सैनिकों की फौज चमकौर आ पहुँची और अंततः २२ दिसंबर १७०४ काले घने बादलों से घिरे चमकौर में, हल्की-हल्की बारिश और ठण्डी हवा के बीच दुनिया का एक मात्र अनोखा युद्ध प्रारम्भ हुआ, जिसमें एक ओर १० लाख मुगल सैनिक थे; वहीं दूसरी ओर मात्र ४० सिख योद्धा, गुरु गोविंद सिंह और उनके २ साहिबजादे थे। मुगलों की सेना ज्यों ही आगे बढ़ी, उन पर तीरों की वर्षा की गयी। वजीर खान को इसकी अपेक्षा न थी। करीब १०००० मुगल सैनिक पहले धक्के में ढेर हो गए। तीर समाप्त होता देख गुरु गोविन्द सिंह ने रणनीति बनाकर पाँच-

पाँच सिख सैनिकों का जत्था मुगलों से लड़ने के लिए किले से बाहर भेजना शुरू कर दिया। पहले जत्थे में भाई हिम्मत सिंह, अपने चार साथियों के साथ मैदान में उतर गए।

गुरू गोविंद सिंह स्वयं भी किले की डियोढ़ी (छत) से मुगलों पर तीरों की बौछार करने लगे। लम्बे समय तक अपना शौर्य- पराक्रम दिखाकर, पहला जत्था शहीद हो गया। गुरू गोविन्द सिंह ने फिर दूसरा जत्था युद्ध के लिए बाहर भेजा। देखते ही देखते मुगलों के पैर उखड़ने लगे, उनमें अजीब सा डर घर कर गया। हर किसी की समझ से बाहर था कि कैसे मात्र ४० सिख, १० लाख की फौज से लोहा ले रहे हैं? जल्द ही संध्या हो गई, युद्ध विराम हुआ, परन्तु गुस्साए वज़ीर खान ने रात्रि के अंधेरे में ही अपने कई साथी हिदायत खान, फूलान खान, इस्माइल खान, असलम खान, जहान खान, खलील खान, भूरे खान आदि को किले के भीतर दाखिल होने का आदेश दिया। आदेश पाकर सारे मुगल कच्ची डियोढ़ी में घुसने की तैयारी करने लगे।

इधर सिक्खों को यह सूचना मिली, तो गोविंद सिंह जी के बड़े बेटे जुझार सिंह ने मोर्चा सम्भाला। एक-एक जत्था जाता रहा, गुरु गोविंद सिंह के दोनों बेटे धर्म की वेदी पर न्यौछावर हुए। अंत में पाँच शिष्यों ने पंच-प्यारे बनकर गुरु गोविन्द सिंह को आदेश दिया। खालसा की खातिर त्वाडि दरकार एने तुसी रण छड्डो। गुरु गोविंद सिंह ने आदेश शिरोधार्य किया। अन्तिम पाँच शिष्यों में से, चार ने मोर्चा संभाला। मशाल धारकों को निशाना बनाया गया। किले के चारों ओर से आवाज आयी पीरे हिन्द जा रहा, हिम्मत हो सो रोक। अंधेरे में '' जो बोले सो निहाल सत् श्री अकाल '' के नारे गूँजने लगे। मुगल सेना घबराहट में स्वयं पर ही टूट पड़ी। अचानक सब शांत हुआ और तब तक गुरु गोविंद सिंह अपने एक घायल सिपाही सहित, सकुशल वहाँ से निकल गये। प्रातः काल वज़ीर खान ने देखा मुगल सैनिक आपस में लड़कर मर चुके थे। मुगल सेना को भारी निराशा हुई, लाखों शवों में मात्र ३९ शव ही सिख सैनिकों के थे। वहीं मुगल फौज का लगभग सफाया हो चुका था। सरकारी आँकड़ों के अनुसार कश्मीर, लाहौर, दिल्ली और सरहिंद की सभी सेनाओं को मिलाकर लगभग ७ लाख सैनिक इस अभियान में मारे गए।

गुरु गोविंद सिंह कहा करते थे-

''चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ, गीदड़ को मैं शेर बनाऊँ''

''सवा लाख से एक लडाऊँ, तब गोविद सिंह नाम कहाऊँ''

चमकौर के युद्ध से यह कथन चरितार्थ हो गया था। रूपनगर से १५ किलोमीटर दूर चमकौर साहिब इस शौर्य गाथा का जीवन्त उदाहरण है। यहाँ के प्रसिद्ध राजा विडिचंद बाग में, शहादत के तीर्थ के रुप में ऐतिहासिक गुरुद्वारा श्री कत्लगढ़ साहिब स्थापित है। जो चमकौर के युद्ध में शहीद हुए सिख सैनिकों को समर्पित है। देशभक्ति की ऐसी मिसाल मिलना बहुत मुश्किल है जहाँ मुट्ठी भर लोगों ने विशाल सेना को धूल चटा दी। भारत देश के सूरमाओं की यशोगाथा समूचा विश्व गाता आया है और सदैव गाता रहेगा।

# अनाहत

स्वार्थ और संकीर्णता के दायरे से कुछ तो उबरा जाये
कुछ क्षण के लिये सही 'अनाहत' से रुबरु हुआ जाये

यह व्यर्थ की आपाधापी और बड्डपन का छद्म खेल
रिश्तों की बिछाकर बिसात लोकाचार का घाल मेल
उन्मुक्त संबंधों की आग से इस कदर ना खेला जाये
कुछ क्षण के लिये सही 'अनाहत से रुबरु हुआ जाये।

यह व्यर्थ की कशमकश और दिलासाओं का प्रपंच
हर किरदार ओढ़ मुखौटा चमका रहा बस रंगमंच
समझ का हरणकर मन को तो ना बरगलाया जाये
कुछ क्षण के लिये सही 'अनाहत से रुबरु हुआ जाये।

यह नाहक तेरा-मेरा और जगत समेटने की सनक
नश्वर सरअंजामों में जैसे कागजी फूलों की महक
झूठी मुस्कान के साथ खुद को ना धोखा दिया जाये
कुछ क्षण के लिये सही 'अनाहत से रुबरु हुआ जाये।

अनाहत मन का सुकून हृदय का प्रस्फुटित ज्वार
संवेदनाओं का जागरण आत्मीयता का नूतन विस्तार
ईश्वरीय झरोखों से कभी यह जीव जगत देखा जाये
कुछ क्षण के लिये सही 'अनाहत से रुबरु हुआ जाये।

अनाहत ब्रह्मांणीय नाद जिसमें ईश चेतना का वास
केशव की मधुर बाँसुरी महाकाल का अभिनाव रास
चेतना का प्रखरतम् आयाम जरा छूकर आया जाये
कुछ क्षण के लिये सही 'अनाहत से रुबरु हुआ जाये।

# चरैवेति चरैवेति

कभी-कभी ! एकाएक परेशानियों का दौर आता है।
उस समय मन एकदम से उलझ जाता है।
अपने और अपने जैसे लगने वाले लोग
भी उस समय कही अटके नजर आते हैं।
सारी परिस्थितियों को समझ
पाने में सभी भटक जाते हैं।

इस समय मन मे भटकन से
विचारो में बहुत द्वन्द आ जाता है ।
अपना मन ही ना चाहते हुए भी
अपने विभिन्न रंग दिखाता है।
इस मन की कहानी से निकलना आसान नही
और जब तक इससे बाहर न
निकले तब तक छटपटाहट का दौर आसान नहीं।

इस स्थति में ही अपने को धैर्यता से वीराम दे ।
अपने मन के साथ रहते हुए इसे रचनात्मक काम दें।
मन खराब से मन सही होते
समय बहुत से भ्रम के सपने दिखायेगा।
इससे अलगए हृदय मन को
मन के द्वारा ही महकायेगा।

बस !
मन के बीच की अवधि को पकड़ना होगा।
अच्छा हो या बुरा इस सिरे से समझना होगा।
मंजिल पास में ही होगी ! बस !
एक एक कदम चलना होगा।

■ डॉ. उमाकांत इंदौलिया, विभागाध्यक्ष-पर्यटन विभाग

# अंतस का दीपक

अपने पथ पर अपनी ही
बुराईयों को देखना है।
किसी से कुछ नही कहना
न समझना है।

इस राह में जो सुझाव मिले
उस पर दृष्टि जमानी है।
जो बात ठीक लगे उसकी
कुछ बातें अपनानी है।

याद रहे ! इस सफर में किसी
के साथ का इन्तजार बेकार है।
अब कौन अपनी ही बुराई से
लड़ने को तैयार है।
इस लड़ाई में तकलीफ अपार है।

धैर्यता के साथ एक एक
कदम बढ़ाने को कौन तैयार है
तो निकल पड़ो अपने ही
चित्त के समर भूमि में !
अपने बनाये संस्कारो की
कर्मभूमि में !

बस अमावस की रात में भी
चलने का हौसला रखना।
अंतस के दीपक को जला कर
पूरा हर रास्ता करना।

■ डॉ. अरुणेश पाराशर, विभागाध्यक्ष-पर्यटन विभाग

# Art of Resolution

■ **Dr. Smita Vashistha,** Sr. Assistant Professor, JMC Department

## Let's begin

On the occasion of New Year most of us try to keep resolutions. Resolutions are those commitments which bind us within, with our own strengths and weaknesses. Specially when the year starts we are thrilled and this wave of joy help us to make resolutions. But very few of them are able to keep these resolutions.

Psychologists believe that people usually keep resolutions related to lifestyle changes, as people want to change their habit. Habit of smoking and related aspects, saving money etc. but what is lacking is the innate emotions and feelings which need changes too.

The main reason that people don't stick to their resolutions is that they set too many or they're unrealistic to achieve. They may also be victims of "False Hope Syndrome". False Hope Syndrome is characterised by a person's unrealistic expectations about the likely speed, amount, ease and consequences of changing their behaviour.

## There are some suggestions as how one can keep resolutions and be calm.

- Be realistic. You need to begin by making resolutions that you can keep and that are practical. One can make a diary to note the things which a person wants to change. A thing which needs change should be small and reachable. For example: person who wants to get up early morning can change this habit by taking the help of alarm clock or asking a friend to help in waking up.
- Do one thing at a time. One of the easiest routes to failure is to have too many resolutions. If you want to be fitter and healthier, do just one thing at a time. A checklist could be generated and with the help of it things could be checked.
- Be SMART. Anyone working in a job that includes setting goals will know that goals should be SMART, that is, specific, measurable, achievable, realistic and time-bound. Resolutions shouldn't be any different. If, for example, your aim is to exercise more frequently, schedule three or four days a week at the gym instead of seven.
- Tell someone your resolution. Letting family and friends know that you have a resolution will help you to keep your resolution. And you can expect a reward too. They would acknowledge the achievments would encourage one to continue. Consider joining a support group to reach your goals workout. Having someone to share your struggles and successes with makes your journey to a healthier lifestyle that much easier and less intimidating.
- Don't Limit Yourself. Changing your behaviour, or some aspect of it, doesn't have to be restricted to the start of the New Year. It can be anytime. Accept lapses as part of the process. One can still decide any day to restart with the resolution.

Above points are changeable and vary to the individual's personal traits. Remember that minor missteps when reaching your goals are completely normal and OK. Everyone has ups and downs, resolve to recover from your mistakes and get back on track.

Dev Sanskriti Vishwavidyalaya, Gayatrikunj-Shantikunj, Haridwar

www.dsvv.ac.in

- Recognized by the UGC
  (under section 2(f) to the UGC act, 1956)
- ISO 9001:2015 Certified
- First State private University of Uttarakhand
- Privately sponsored by Vedmata Gayatri Trust
  (No financial aid from any Government agency)
- NAAC Accredited University
- Member of Association of Common Wealth Universities.
- Member of International Council of Professional Therapists (ICPT), London
- Knowledge partner of Ministry of Tourism
- Invited member of Swachh Bhaarat Abhiyaan
- Core committee member for celebrating International Day of Yoga
- Recipient of the renowned Erasmus+ Scholarship
- Host of Asia's first Centre for Baltic Culture and Studies

DEV SANSKRITI
VISHWAVIDYALAYA